ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 38 अंक 3 जनवरी 2018

10/5/2018 10:16:09 AM

लेखकों के लिए दिशानिर्देश

लेखक अपने मौलिक लेख / शोध-पत्र सॉफ़्ट कॉपी (जहाँ तक संभव हो यूनीकोड में) के साथ निम्न पते या ई-मेल journals.ncert.dte@gmail.com पर भेजें –

अकादमिक संपादक
भारतीय आधुनिक शिक्षा
अध्यापक शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

लेखक ध्यान रखें कि लेख / शोध-पत्र —

- सरल एवं व्यावहारिक भाषा में हो, जहाँ तक संभव हो लेख / शोध-पत्र में व्यावहारिक चर्चा एवं दैनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों का समावेश करें।
- विषय-वस्तु लगभग 2500 से 3000 शब्दों या अधिक में हिंदी फ़ोंट में टंकित हो।
- विषय-वस्तु के साथ ही तालिका एवं ग्राफ़ हो तथा व्याख्या में तालिका में दिए गए तथ्यों एवं ग्राफ़ का उल्लेख हो।
- ग्राफ़ अलग से एक्सल फ़ाइल (Excel File) में भी भेजें।
- विषय-वस्तु में यदि चित्र हो, तो उनके स्थान पर खाली बॉक्स बनाकर चित्र संख्या लिखें एवं चित्र अलग से JPEG फ़ॉर्मेट में भेजें, जिसका आकार कम से कम 300 dots per inch (dpi) हो।
- लेखक/शोधक अपना संक्षिप्त विवरण भी दें।
- संदर्भ वही लिखें जो लेख/शोत्र-पत्र में आए हैं अर्थात् जिनका वर्णन लेख/शोध-पत्र में किया गया है। संदर्भ लिखने का प्रारूप एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार हो, जैसे—

  पाल, हंसराज. 2006. *प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान*. हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

लेख / शोध-पत्र

- लेख की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना लिखें, जो आपके लेख के शीर्षक से संबंधित हो, अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- निष्कर्ष या समापन विशिष्ट होना चाहिए।
- शोध-पत्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना एवं औचित्य लिखें, जो आपके शोध-पत्र के शीर्षक से संबंधित हो अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं एवं जो शोध कार्य हुए हों, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- न्यादर्श की पूरी जानकारी लिखें अर्थात् न्यादर्श की प्रकृति, न्यादर्श चयन का तरीका आदि।
- प्रदत्त संकलन के लिए उपयोग किए गए उपकरणों की संक्षिप्त जानकारी दें।
- प्रदत्त विश्लेषण में तथ्यों का गुणात्मक आधार बताते हुए विश्लेषण करें।
- उद्देश्यानुसार निष्कर्ष लिखें तथा समापन विशिष्ट होना चाहिए।
- शोध-पत्र के शैक्षिक निहितार्थ भी लिखें अर्थात् आपके शोध निष्कर्षों से किन्हें लाभ हो सकता है।

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के द्वारा प्रकाशित तथा चार दिशाएँ प्रिंटर्स प्रा.लि., जी 40 - 41, सैक्टर - 3, नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

11/6/2018 2:18:45 PM

वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान शिक्षा के मायने

सविता प्रथमेश*

हम विज्ञान आधारित जीवन जी रहे हैं। विज्ञान ने हमारे जीवन को सरल बना दिया है। विज्ञान के बिना जीवन की कल्पना बेमानी है। दैनिक जीवन में हम विज्ञान के अनेक उपकरणों का उपयोग करते हैं। विज्ञान की महत्ता समझते हुए ही प्राथमिक स्तर से ही विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है, किंतु दैनिक जीवन से हम विज्ञान को जोड़ पाने में असमर्थ रहे हैं। प्राकृतिक घटनाएँ किसी समय ज़रूर चमत्कार समझी जाती रही हों, किंतु आज विज्ञान की बदौलत हमें ज्ञात हो चुका है कि चमत्कार जैसा कुछ भी नहीं होता। समस्त घटनाओं के पीछे कारण होता है। विज्ञान शिक्षा के द्वारा इन कारणों को विद्यार्थियों के समक्ष रखना है। ताकि वे क्या,क्यों और कैसे के चश्मे से घटनाओं को देख सकें और विज्ञान सम्मत एक निर्णय पर पहुँच सकें। विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भी यही है। यह लेख असामाजिक कुरूतियों एवं अंधविश्वास पर आधारित अनुभवों पर ध्यान केंद्रित करते हुए शिक्षा के माध्यम से उन्हें दूर कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने पर भी ज़ोर देता है।

यह विज्ञान के चरम का युग है। लगता है मानो कोई सुखद स्वप्न हो। चाँद-तारे धरती से देखने वाली चीज़ें नहीं रहीं। समुंदर पार विदेश अजूबा नहीं रहा। धरती की अतल गहराई से लेकर अंतरिक्ष क्या, आकाश क्या, जल क्या, थल क्या, भूत क्या, भविष्य क्या, आप बता सकते हैं कि विज्ञान कहाँ नहीं है? हमारा सारा जीवन ही विज्ञान से संचालित है। हम विज्ञानमय हो चुके हैं, कहना अतिरेक नहीं है। फिर भी कभी आपने सोचा कि इतने गहरे पैठने के बावजूद विज्ञान कहाँ नहीं है? सामान्य तौर पर हमारा एक ही उत्तर होगा कि विज्ञान सर्वत्र है। फिर भी यदि आपको कोई कहे कि विज्ञान अभी भी कुछ क्षेत्रों में अपनी दखल नहीं बना पाया है तब? शायद ही कोई विश्वास करे, पर यह कटु सत्य है कि विज्ञान को जहाँ जाना चाहिए था, वहाँ यह पहुँचा ही नहीं, क्योंकि अगर पहुँचा होता तो हम कुछ और होते और हमारा समाज कुछ और। विज्ञान जिस स्थान से शुरू होता है, वहाँ नहीं पहुँच पाया है। मानव की समस्त प्राणियों में श्रेष्ठता उसके उर्वर मस्तिष्क की वजह से है। विज्ञान के सारे आविष्कारों के पीछे यह हमारा मस्तिष्क ही है। यह विडंबना ही है कि विज्ञान जो मस्तिष्क से आरंभ हुआ, जिज्ञासा से जिसकी नींव पड़ी, उसी मस्तिष्क में घर करने में विफल रहा है। हमारा जीवन और समस्त जैविक प्रक्रियाएँ, यह

* *निसर्ग नीड़*, 11 आर.के. रेज़ीडेंसी, घुरुरोड, तिफ़रा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ 495223

ब्रह्मांड, प्रकृति सभी विज्ञान के नियमों से संचालित हैं। गुरुत्वाकर्षण नहीं होता तो हमारा पृथ्वी पर रहना असंभव था। विज्ञान की खोजों ने हमारे जीवन को आसान, सुविधाजनक और निरापद बना दिया है। यह तो हम मानते हैं, पर फिर भी हममें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा नहीं हो पाया है, यह अफ़सोस की बात है। विज्ञान निरीक्षण से आरंभ होकर निष्कर्ष पर समाप्त होता है। अंग्रेज़ी का साइंस शब्द लैटिन शब्द *शाइंटिया* से निकला है, जिसका अर्थ होता है 'ज्ञान'। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम भी ऐसे ही निरीक्षण या अवलोकन से आरंभ हुआ कि सेब नीचे गिरता है, दिमाग में घंटी बजी। "नीचे ही क्यों?" बस दिमाग ने और भी अवलोकन करना शुरू कर दिया। परिणाम है गुरुत्वाकर्षण का नियम। इससे यह सिद्ध होता है कि जहाँ पर भी क्या? क्यों? कैसे? जैसे प्रश्न उठते हैं, वहीं विज्ञान है। हम प्राथमिक स्तर से लेकर अनिवार्यतः दसवीं कक्षा तक विज्ञान पढ़ते और पढ़ाते हैं। अगर आगे चलकर बच्चे ने विज्ञान एक विषय के रूप में पढ़ने का निश्चय किया है, तब तो फिर और भी लंबे समय तक वह विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को पढ़ता और समझता है। पर क्या इतना विज्ञान पढ़ने के बाद भी बच्चे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आ पाता है? शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों में विद्यार्थी-शिक्षकों को विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों में सर्वप्रथम यही बताया जाता है कि विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना विज्ञान शिक्षण के अनेक उद्देश्यों में से एक और सर्वप्रमुख है।

विज्ञान शिक्षण का अध्ययन प्राथमिक स्तर से ही आरंभ हो जाता है। छोटे बच्चों को गतिविधियों के माध्यम से दैनिक जीवन में विज्ञान के नियमों को समझाया जाता है। जैसे-जैसे कक्षाओं का स्तर बढ़ता जाता है, विज्ञान की पढ़ाई कठिन होती जाती है और एक समय ऐसा आता है जब बच्चों को विषय चयन करना होता है तो वे ही बच्चे विज्ञान लेना चाहते हैं, जो सचमुच इसे पढ़ना चाहते हैं, क्योंकि आगे की पढ़ाई और भी कठिन होती है। किसी ने विज्ञान को चाहे जिस भी स्तर तक पढ़ा हो, चूँकि प्राथमिक स्तर से ही वह विज्ञान को इतना अधिक पढ़ चुका होता है कि विज्ञान क्या है? यह वह अच्छे से समझ चुका होता है और यह काफ़ी होता है, क्योंकि विज्ञान की आगे की पढ़ाई तो करियर के लिए अधिक होती है।

ऐसी स्थिति जहाँ पर बच्चे प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर यानी कक्षा दस तक अनिवार्यतः विज्ञान पढ़ते हों, वहाँ पर हमारे दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं के प्रति स्वाभाविक रूप से विज्ञान सम्मत विचार और दृष्टिकोण होना चाहिए, क्योंकि विचार निर्मित होने और दृष्टिकोण बनने के लिए दस वर्ष का समय बहुत होता है। लेकिन दैनिक जीवन में हम अनुभव कर रहे हैं कि ऐसा कतई नहीं हो रहा है, कुछ बानगी ही काफ़ी है। कुछ दिनों पूर्व लेखिका की एक नाक, कान, गला विशेषज्ञ से चर्चा हो रही थी, वे स्वयं डॉक्टर के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक संगठनों से जुड़ी हैं और अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी बखूबी निभा रही हैं। किसी दंपत्ति को विवाह के दस बरस बाद भी संतान सुख प्राप्त नहीं हुआ था। उन्होंने कहा कि मैंने उन्हें अमुक मंदिर में जाने के लिए कहा था, पर वे नहीं गए, अगर जाते तो आज उनके आँगन में बच्चे खेल रहे होते। इधर हमारे पड़ोस में बाहर

से एक नया परिवार आया हुआ है। पत्नी ने शायद अधिक औपचारिक शिक्षा नहीं ली है। रोज़ाना गुरुद्वारे जाना उनकी दिनचर्या में शामिल है। बातों ही बातों में उन्होंने भी कहा कि उनके पास एक मंत्र है, जिसके पाठ से निःसंतानों को संतान प्राप्ति हो जाती है। जब वे मुझे बता रही थीं तो मेरे ज़हन में उस डॉक्टर की याद ताज़ा हो गई। आप समझ सकते हैं क्यों?

शिक्षा का उद्देश्य क्या है? इन दोनों प्रकरणों से तो यही लगता है कि यह मात्र अक्षर ज्ञान के अलावा और कुछ नहीं। क्योंकि अगर इससे इतर यह होती तो इन दोनों के दृष्टिकोण में इस कदर समानता नहीं होती। दोनों ने ही ऐसी बातों पर विश्वास किया, जिस पर विज्ञान नहीं करता। हम सभी शालाओं में पढ़ते ही हैं कि जीवों की वंश वृद्धि के लिए प्रजनन क्रिया होती है। अगर किसी मंदिर में जाने या मंत्रोच्चार से बच्चे होते हों तो विवाह जैसी संस्थाओं की आवश्यकता ही नहीं पड़ती या डॉक्टर की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

सामान्य व्यक्ति जो अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है, ईश्वरीय शक्ति पर भोलेपन से विश्वास करता है, उसका इन बातों पर विश्वास एकबारगी क्षम्य है। किंतु विज्ञान की सर्वोच्च पढ़ाई कर चुके चिकित्सक से इस तरह के आधारहीन सुझाव भला किस ओर इशारा कर रहे हैं? ऐसे ही दिल्ली के एक डॉक्टर की खबर से कुछ वर्ष पूर्व रूबरू हुए थे, उन दिनों जब शुरू-शुरू में लौकी का रस पीने का चलन शबाब पर था और जिसने लौकी जैसी सर्वसुलभ सब्ज़ी को भी आसमान पर पहुँचा कर सामान्य लोगों की थाली से गायब कर दिया था। उस समय दिल्ली के इन डॉक्टर महोदय ने भी लौकी का रस लिया। जो वे कुछ समय से ले रहे थे। किंतु इस बार रस ने धोखा दे दिया। उनकी तबियत बिगड़ गई यहाँ तक कि उनकी मौत भी हो गई। जिसकी वजह लौकी का कड़वा रस था। हमें मालूम है कि लौकी, खीरा, ककड़ी यहाँ तक कि कई बार गाजर या कुछ अन्य सब्ज़ियों और फलों का स्वाद कड़वा और मूल स्वाद से हटकर होता है, जिसका सीधा-सा अर्थ होता है कि इनमें कुछ ऐसे विषैले तत्व आ जाते हैं, जिससे इनका सेवन हानिकारक हो सकता है।

हमारे दैनिक जीवन में हमें ऐसी अनेक घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती हैं, जब तथ्यों या सत्य को नज़रअंदाज़ कर हम व्यवहार करते हैं। माना जाता है कि पीलिया जैसी बीमारी झाड़-फूँक से ही ठीक होती है और लकवा ठीक करने के लिए कबूतरों की बलि आवश्यक है। दुःखद बात यह है कि सबसे अधिक और लगातार अंतरिक्ष में उपग्रह भेजने वाले देश का, वैज्ञानिक उपकरण एवं गैजट्स रखने वाला भारी भरकम पढ़ाई किया हुआ भारतीय भी वही कर रहा है, जो अशिक्षित व्यक्ति करता है। फिर शिक्षित एवं अशिक्षित में क्या फ़र्क रहा?

कहा जाता है, शिक्षा वही है जो व्यवहार में परिवर्तन करे, जो हमें बदले। हम जो कल थे, शिक्षित होने के बाद वही न रह जाएँ। बदलने का अर्थ है हमारी सोच, किसी घटना को देखने के प्रति नज़रिए में अंतर। कल तक जिस घटना को हम सहज बुद्धि से स्वीकार लेते थे, अगर आज उसे लेकर हमारे मन में क्या, क्यों और कैसे जैसा प्रश्न नहीं उठ रहा है तो शिक्षा विशेषकर विज्ञान शिक्षा, के वर्तमान स्वरूप पर प्रश्न चिह्न लगता है।

आज की विज्ञान शिक्षा बच्चों को क्या सिखा रही है?

क्या विज्ञान शिक्षा वह सीखा रही है जो इसका उद्देश्य है जिसे शिक्षक-प्रशिक्षण में सिखाया जाता है? यानी विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण करना या मात्र किताबी ज्ञान ही दे पा रही है? विज्ञान की पुस्तकें क्या इस तरह से लिखी गई हैं कि वे ज्ञान चक्षु खोलकर बच्चों को एक नयी दुनिया की सैर कराएँ? विज्ञान की पुस्तकें क्या महज़ सूत्रों, भारी-भरकम नियमों में ही इतनी उलझकर रह गई हैं कि बच्चा ऑक्सीजन बनाने की जिस प्रयोगशाला विधि को पढ़ता है, वह इतनी समझ तो विकसित कर शाला से निकले कि ऑक्सीजन के लिए वृक्षों का रहना कितना ज़रूरी है या हवा और पानी जैसे प्राणदायक घटक हम नहीं बना सकते। पर यह हो नहीं रहा है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो नीति-निर्धारक और इससे जुड़े लोग वृक्षों की अँधाधुँध बलि लेकर तथाकथित विकास का ढिंढोरा नहीं पीटा करते या सरकार को विवश होकर "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" का नारा देकर अलग से अभियान नहीं शुरू करना पड़ता, कन्या भ्रूण की हत्या नहीं होती और लड़कियाँ पैदा होने पर महिलाओं को प्रताड़ित नहीं किया जाता।

हमारे समाज में घोर अव्यवस्था है। गाँव-गाँव में सरकार ने प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ खोल रखी हैं, आँगनबाड़ियाँ हैं, दूरदर्शन बहुत पहले से पहुँच चुका है, इंटरनेट भी कुछ स्थानों तक पहुँच गया है, पर ढोंगी बाबाओं का साम्राज्य अभी भी अडिग है एवं फल-फूल रहा है। उनका महिलाओं के साथ कभी भूत-प्रेत उतारने के नाम पर, तो कभी बच्चे होने के नाम पर, तो कभी बीमारी दूर करने के नाम पर घिनौना खेल जारी है। आश्चर्य की बात है कि अधिकतर मामलों में घर वाले ही महिलाओं को इन बाबाओं के पास लेकर जाते हैं। इसका अर्थ है कि शिक्षा व संचार के इन सशक्त माध्यमों ने वह नहीं किया जो करना था। अंधविश्वास, जादू-टोना, काला जादू, नज़र लगना पर विश्वास मात्र अल्प या अशिक्षित लोग ही करते हैं या ढोंगियों के चक्कर में यही वर्ग ही नहीं आता, बल्कि उच्च शिक्षित वर्ग भी इसमें शामिल है। छत्तीसगढ़ की "टोनही प्रथा" ने अनेक महिलाओं का जीवन ले लिया, अमानवीय व्यवहार सहने के लिए विवश किया, सामाजिक बहिष्कार पर मजबूर किया। विज्ञान की तमाम किताबें जो प्राथमिक से उच्च स्तर तक कि होती हैं, में तथ्यों, नियमों का विश्लेषण, सूत्र, उनका प्रतिपादन आदि सारी तथ्यात्मक जानकारी होती है जो स्वाभाविक रूप से विज्ञान के एक विद्यार्थी को जाननी चाहिए, पर जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण की बात विज्ञान शिक्षण कहता है, उसका नामो-निशान भी नहीं होता। वैसे भी जहाँ भौतिकी, रसायनशास्त्र के भारी-भरकम सूत्र और गूढ़ नियमों की पढ़ाई हो जहाँ किताबों से विद्यार्थी को सर उठाने की फुरसत न हो, वहाँ क्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्माण के लिए कहीं कोई स्थान है भी? इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि हमारी व्यवस्था में इस बात की जाँच-परख के लिए कहीं स्थान ही नहीं है कि विद्यार्थी ने विषयगत उद्देश्यों को प्राप्त किया भी है कि नहीं? इसीलिए हम प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च और उच्चतर शिक्षा तो ग्रहण कर लेते हैं, बल्कि अच्छे अंकों के साथ और बहुत

बार तो स्वर्ण पदक के साथ। जब किसी सामाजिक या धार्मिक परंपराओं या कुरीतियों पर भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की बात होती है तो हम किसी भी कोण से वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधारित नज़रिया नहीं रखते। वैज्ञानिक दृष्टिकोण कोई अलग-सा नज़रिया नहीं, अपितु केवल सत्य को जानना और उसे स्वीकारना तथा उसे दैनिक जीवन में अमल में लाना है। विज्ञान का एक विद्यार्थी जिसने परीक्षा में यह उत्तर लिखकर अच्छे अंक प्राप्त किए कि लिंग निर्धारण हेतु पुरुष का गुणसूत्र ज़िम्मेदार है, जब वह स्वयं एक लड़की का पिता बनता है तो इस तथ्य को भूलकर वह पत्नी को ज़िम्मेदार ठहराता है।

नब्बे के दशक में जब हमारा बैच विज्ञान स्नातक हुआ, उस दौरान छत्तीसगढ़ में लगभग हम सभी की शिक्षक की नौकरी लग गई, हम सभी आज की तारीख में चालीस से साठ हज़ार तक का मासिक वेतन प्राप्त कर रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे देश में विज्ञान की शिक्षा रोज़गार के लिए तो अति उत्तम है, पर यह दैनिक जीवन की शिक्षा नहीं बन पाई है। यह बरसों से हमारे मस्तिष्क में घर जमाए कूड़े को साफ़ नहीं कर पाई है, जिसका खामियाज़ा देश आज भी भुगत रहा है।

विश्व के सबसे खुशहाल देशों में भारत 122वें नंबर पर है, गरीबी में हम बांग्लादेश और पाकिस्तान को धकेल अगुवा बने हुए हैं, स्वास्थ्य और शिक्षा में भी हम पिछड़े हैं। स्वास्थ्य में हम 195 देशों में 154वें पायदान पर हैं। विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय बीते ज़माने की बात हो चुके हैं। बचपन में जब रेडियो पर समाचार सुनते थे, तब और कुछ याद हुआ हो या नहीं, पर विकसित और विकासशील दो शब्द ज़रूर याद हो चुके थे और यह भी कि भारत एक विकासशील देश है। हम सोचा करते थे कि जैसे हम बड़े होंगे, हमारा देश भी विकसित देशों की श्रेणी में आ जाएगा। क्या खुशहाल देशों की श्रेणी में हमारे देश की कमज़ोर स्थिति का कारण, गरीबी, शिक्षा और स्वास्थ्य में पिछड़ापन हमारी शिक्षा व्यवस्था विशेषकर विज्ञान शिक्षा के सही तरीके से लागू नहीं होने का परिणाम है? किसी घटना के प्रति हमारा वैज्ञानिक नज़रिया क्या हमें खुश रख सकता है या गरीबी दूर करने में मददगार साबित हो सकता है या जेंडर असमानता, लड़कियों और महिलाओं के प्रति अत्याचार, पशुओं के साथ क्रूरता और पर्यावरण जैसे मुद्दों को सही तरह की विज्ञान शिक्षा से हल किया जा सकता है? निश्चित ही इसका उत्तर हाँ होगा।

हम एक परंपरावादी देश में रहने वाले हैं, जिनमें से अनेक परंपराओं ने रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वास का रूप ले लिया है, जिनकी वजह से देश अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है और हम आज तक ऐसे मुद्दों पर ही उलझे हुए हैं, जिनका कोई आधार नहीं है, जो औचित्यहीन हैं। अभी कुछ दिनों पूर्व नोबेल पुरस्कार विजेता वेंकटरमण रामाकृष्णन ने कहा कि 'भारत को मांस पर बहस छोड़ विज्ञान और गणित की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए, अगर वह ऐसा नहीं करता है तो चीन से और पिछड़ जाएगा।' ज़रूर इसके कुछ मायने होंगे। इस महत्वपूर्ण सलाह पर कितनों की निगाह गई और कितनी बहस हुई?

क्या हमने सही मायनों में विज्ञान की शिक्षा का अर्थ जाना और समझा है? आज भी विज्ञान विषय

की शिक्षा बच्चों और माता-पिता के लिए स्टेटस सिंबल है। मेरा वास्ता बारहवीं तक के विद्यार्थियों से है। दसवीं कक्षा में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण विद्यार्थी भी आगे की पढ़ाई विज्ञान विषय से ही करना चाहता है। लाख काउंसलिंग के बाद बमुश्किल कुछ बच्चे समझ पाते हैं, बाकि को बारहवीं में एक साल खराब करने के बाद समझ आती है। ऐसे हालातों में विज्ञान के सही विद्यार्थी देश को मिल रहे हैं, कहना मुश्किल है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जो मिल रहे हैं क्या उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और समझ है?

मैंने स्वयं विज्ञान विषय तक की स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। मैंने सिर्फ़ रसायनों के नाम, सूत्र, प्रयोगशाला विधि, भौतिकी के नियम, जीवों तथा पेड़-पौधों के बारे में खूब अच्छे से पढ़ा है, पर किसी ने भी मुझमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा नहीं किया, न ही हमारे जीवन में घुसपैठ कर चुके अंधविश्वासों से पर्दा उठाया। बिल्ली का राह से गुज़रना हमारे लिए रास्ता काटना ही रहा। अंगारों पर नंगे पैर चलना किसी चमत्कार से कम नहीं रहा। बाबाओं का भभूति निकालना अजूबे से कम नहीं रहा। हमें विज्ञान के किसी विषय में नहीं पढ़ाया गया कि हवा में हाथ घुमाने से ताबीज़ नहीं आ जाता। आदिमानव जैसे तो हमारे लिए सभी घटनाएँ चमत्कार ही रहीं। जबकि हम दिगंबर से वस्त्रधारी अवस्था में आ चुके थे, पर दिमागी तौर पर हम आज भी चमत्कार को ही सब कुछ मान बैठे। दैनिक जीवन में होने वाली घटनाओं और पीढ़ियों से किए जा रहे क्रियाकलापों पर हमारे ज़हन में क्या? क्यों? और कैसे? न तो भौतिक विज्ञान ने उठाया, न रसायन और न ही जीवविज्ञान ने, तब फिर हमने किस तरह की विज्ञान की पढ़ाई की? समझ से परे है। विज्ञान की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी अगर मैं शारीरिक अपंगता को पूर्वजन्म का फल मानू, निःसंतान होने पर पीर बाबाओं, मंदिर, मस्जिद के चक्कर लगाऊँ तो मेरी शिक्षा व्यर्थ है। आज के समय की विडंबना यही है कि विज्ञान की महँगी पढ़ाई करने के बाद भी दिमागी तौर पर हममें परिवर्तन नहीं आया है।

आज़ादी के समय हर किसी ने आज़ाद भारत का सपना देखा था। आज़ाद भारत की सभी की अपनी कल्पना थी। गुरुदेव रविंद्रनाथ टैगोर ने भी अपनी कविता, 'व्हेयर द माइंड इज़ विदाउट फ़ीयर' में लिखा है, मैं ऐसे आज़ाद भारत की कल्पना करता हूँ, जहाँ मानव तर्क का उपयोग कर मस्तिष्क में मृत आदतें जो पीढ़ियों से जमा हैं, का सफ़ाया कर सके ताकि मस्तिष्क में स्वच्छ, निर्मल धारा प्रवाहित हो सके। एक ऐसा भारत जो अंधविश्वासों से मुक्त हो। अंत में वे कहते हैं 'हे मेरे पिता! मेरे देश को जाग्रत कर' (ओ फ़ादर! लेट माई कंट्री अवेक)।

कोई भी देश कैसे जाग्रत होता है? ऐसा कौन-सा वाद्य यंत्र है जो उसे जगा पाए? क्या गुरुदेव ने कहीं इशारा किया है? इसी कविता के आरंभ में वे कहते हैं, मैं ऐसा समाज चाहता हूँ, जहाँ लोगों के मध्य जाति, पंथ, धर्म, रंग की दीवार न हो।

गुरुदेव की कल्पना कैसे साकार होगी? ऐसी कौन-सी कूची है जो इस दीवार को पोत कर सभी को एक कर सके? इसका उत्तर निश्चित ही हाँ है, वह यंत्र, वह कूची है शिक्षा। शिक्षा ही वह माध्यम है जो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर सकती है। जिन देशों ने शिक्षा के इस गूढ़ रहस्य को जाना,

समझा और अपनाया निस्संदेह उनकी प्रगति मिसाल है और वे उन मसलों में उलझे हुए नहीं हैं, जिनकी ओर नोबेल पुरस्कार विजेता वेंकटरमण रामाकृष्णन ने इशारा किया है।

अफ़सोसजनक बात यह है कि हमारे देश में शिक्षा को इतना महत्वपूर्ण कभी समझा ही नहीं गया और आज़ादी के सत्तर बरस बाद भी देश की बर्बादी के लिए लॉर्ड मैकाले को कोसा जाता है, जबकि कर्णधारों के पास सत्तर बरस जितना लंबा समय था। जिसमें मैकाले को शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकालकर अपना कुछ दे सकते थे, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, क्योंकि हममें इच्छाशक्ति का अभाव था। हम करना ही नहीं चाहते थे, क्योंकि करने के अपने नुकसान थे।

कारण चाहे जो रहे हों, यह बात तो तय है कि आज़ादी के बाद नेहरूजी ने जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सोच के आधार पर कल-कारखाने, बांधों आदि का निर्माण कराया, उसने एक उम्मीद बंधाई थी कि हो सकता है हमें एक वैज्ञानिक चेतना और मनोवृति भी मिल जाए, पर यह हो न सका। आज भी हम अंधविश्वासों, बाबाओं, मुल्ला-मौलवियों, ओझा, जात-पात, भेदभाव, रंगभेद, धर्म और संप्रदाय में ही उलझकर रह गए हैं।

प्राथमिक स्तर से विज्ञान पढ़ने के बाद भी पीलिया जैसी बीमारी को झाड़-फूँक से ही दूर होने का दृढ़ विश्वास क्या बताता है? या भूत पकड़ना, देवी आना, लड़के की चाहत परिवार की वृद्धि, पत्नी को घर निकाला या उसके साथ अमानवीय व्यवहार, अगर अभी तक किसी समाज में हो रहा है तो निश्चित ही यह उस देश की शिक्षा व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न है। विशेषकर उस स्थिति में तो और भी जबकि हमें गर्व होता है कि हमने विश्व को शून्य दिया। सुश्रुत, धन्वंतरि, आर्यभट्ट, भास्कर जैसे वैज्ञानिक दिए। किंतु हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं दिया, अगर दिया होता तो धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़े हमारे लिए आम नहीं हो जाते। जातिगत भेदभाव देश को खोखला न कर रहा होता।

प्राथमिक स्तर से विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण अन्य विषयों की तरह सामान्य रूप से पढ़ा दिया जाता है। एक कक्षा में, बच्चों को फूल, पौधों, जीव-जंतुओं के बारे में प्रकृति में रहकर ही बताया जा सकता है। आपसी बातचीत से नए पहलू उजागर होते हैं और इसी समय दृष्टिकोण निर्माण भी होता है। इस स्तर पर निर्मित वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवनपर्यंत बच्चों के साथ रहता है, जो एक अच्छे नागरिक के रूप में देश के काम आते हैं।

संदर्भ

https://thewire.in/178555/venkatraman-ramakrishnan-education-meat/

http://www.tolstoytherapy.com/2014/06/let-my-country-awake-by-rabindranath-tagore-inspiration-change.html

https://en.wikipedia.org/wiki/World_Happiness_Report

http://www.firstpost.com/india/rajasthan-hc-judge-mahesh-sharmas-take-on-cows-and-peacocks-isnt-the-only-reason-hes-unforgettable-3505853.html

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

दर्पण
₹ 140.00 / पृष्ठ 104
कोड — 13151
ISBN — 978-93-5007-830-3

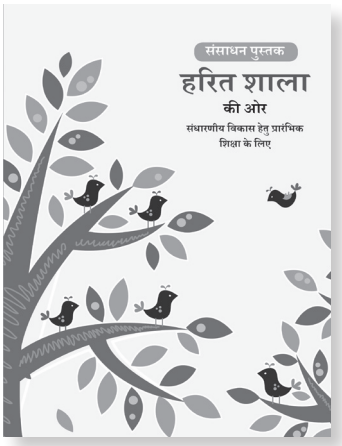

हरित शाला की ओर
₹ 115.00 / पृष्ठ 163
कोड — 13150
ISBN — 978-93-5007-829-7

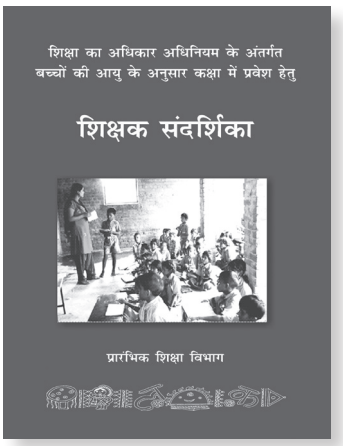

शिक्षक संदर्शिका
₹ 180.00 / पृष्ठ 110
कोड — 13133
ISBN — 978-93-5007-756-6

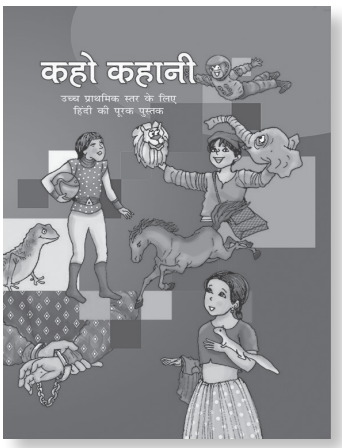

कहो कहानी
₹ 50.00 / पृष्ठ 68
कोड — 21031
ISBN — 978-93-5007-316-2

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

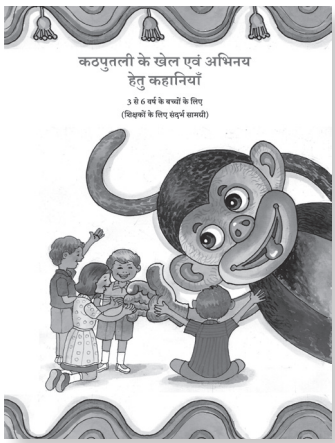

कठपुतली के खेल एवं अभिनय हेतु कहानियाँ
₹ 50.00 / पृष्ठ 34
कोड — 13161
ISBN — 978-93-5007-859-4

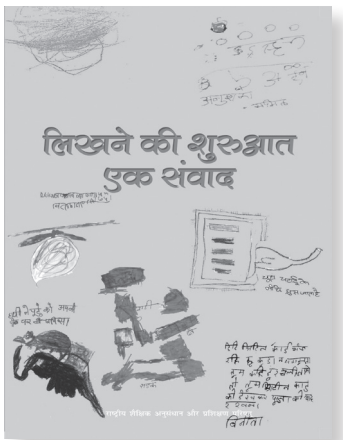

लिखने की शुरुआत एक संवाद
₹ 165.00 / पृष्ठ 132
कोड — 32107
ISBN — 978-93-5007-268-4

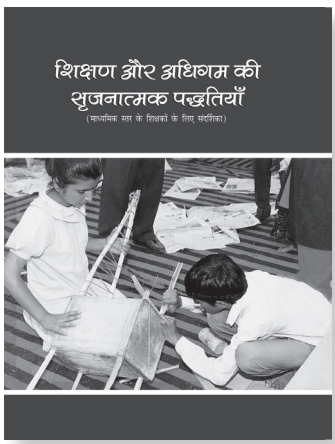

शिक्षण और अधिगम की सृजनात्मक पद्धतियाँ
₹ 75.00 / पृष्ठ 130
कोड — 13107
ISBN — 978-93-5007-280-6

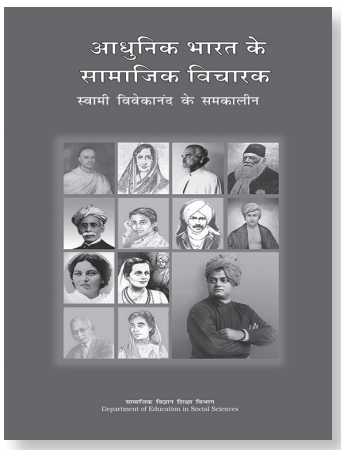

आधुनिक भारत के सामाजिक विचारक
₹ 32.00 / पृष्ठ 66
कोड — 21076
ISBN — 978-93-5007-349-0

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

शिक्षा में तकनीकी की समझ एवं नवीन प्रयोग

विनोद कुमार कंवरिया*

यह लेख शैक्षिक प्रौद्योगिकी अथवा शैक्षिक तकनीकी के विभिन्न आयामों की चर्चा से प्रारंभ होकर शिक्षा की तकनीकी एवं शिक्षा में तकनीकी पर प्रकाश डालता है। पारंपरिक शिक्षण-अधिगम में सीमाओं एवं परिसीमाओं पर विमर्श करता हुआ समय-परिसीमा, स्थान-परिसीमा, अवसर-परिसीमा, लोकतंत्र-परिसीमा या समान अवसर सीमा, सहयोगी एवं सहकारी परिसीमा, प्रतिलिपि-परिसीमा एवं अंत में सांस्थानिक-परिसीमा को चिह्नित कर शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं पर चर्चा करता है। यह लेख केवल समस्याओं पर ही केंद्रित न होकर, ऐसे में समाधान क्या है, के बिंदु को भी उठाता है। वेब 2.0 उपकरण एवं मुक्त-शैक्षिक संसाधन को एक बड़े समाधान के तौर पर देखता ये लेख, वेब 2.0 उपकरण एवं मुक्त-शैक्षिक संसाधन की संकल्पना को समझाने के साथ उसके कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। वेब 2.0 उपकरण एवं मुक्त शैक्षिक संसाधन शैक्षिक समस्याओं का समाधान कैसे करते हैं, पर चर्चा कर इनके बारे में और अधिक ज्ञानवृद्धि करने हेतु एक छोटा-सा कार्य भी दिया गया है। अंत में ये लेख राष्ट्रीय आई.सी.टी. नीति एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के शैक्षिक प्रौद्योगिकी व आई.सी.टी. पर प्रभाव की चर्चा कर शिक्षा में तकनीकी की समझ तथा नवीन प्रयोग के महत्व को सुदृढ़ एवं प्रचारित करता है।

आजकल शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी का प्रयोग लगातार बढ़ता ही जा रहा है। वस्तुतः केवल उच्च स्तर पर ही नहीं, बल्कि प्रारंभिक स्तर पर भी इसके प्रयोग के बारे में लगातार संभावनाएँ अन्वेषित की जा रही हैं एवं मनोनुरूप परिणामों की अपेक्षाएँ की जा रही हैं। वास्तव में, शिक्षा में तकनीकी, शैक्षिक तकनीकी का ही एक अंग है। शैक्षिक तकनीकी, जिसे शैक्षिक प्रौद्योगिकी के नाम से भी जाना जाता है, के मूलतः दो अंग हैं — शिक्षा की तकनीकी एवं शिक्षा में तकनीकी।

शिक्षा की तकनीकी

शिक्षा की तकनीकी काफ़ी पुराना आयाम है। इसके अंतर्गत इस बात पर अधिक बल दिया जाता है कि शिक्षा-शिक्षण एवं शिक्षण-अधिगम बेहतर कैसे हो, जिसमें विभिन्न प्रकार की अधिगम-प्रवृत्तियाँ एवं शिक्षण पद्धतियाँ शामिल हैं। इसमें शिक्षा, शिक्षक, शिक्षण-अधिगम, कक्षा-निर्देश, मूल्यांकन इत्यादि को सर्वोत्तम बनाने की चर्चा की जाती है। यदि एक वाक्य में कहा जाए तो शिक्षा की तकनीकी में उपलब्ध

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007

Chapter 11.indd 105 10/4/2018 9:52:45 AM

संसाधनों का सर्वोचित उपयोग कर शिक्षा को बेहतर बनाने की कोशिश की जाती है।

शिक्षा में तकनीकी

शिक्षा में तकनीकी तुलनात्मक रूप से नूतन संकल्पना है। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी एवं आधुनिक उपकरणों का प्रयोग है। देखा जाए तो इसका कार्यक्षेत्र भी शिक्षा की तकनीकी वाला ही है, उदाहरणतया, शिक्षण-अधिगम एवं मूल्यांकन, शिक्षा में तकनीकी के बढ़ते हुए महत्व का ही परिणाम है कि आजकल अधिकांश विद्यालयों में कंप्यूटर एवं अन्य तकनीकी उपकरणों का प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। शायद यही वजह है कि प्रत्येक विद्यालय, चाहे वह सरकारी हो या निजी, ग्रामीण क्षेत्र में हो या शहरी क्षेत्र में, उच्च माध्यमिक स्तर का हो या प्राथमिक स्तर का, अपने विद्यार्थियों हेतु अधिक-से-अधिक कंप्यूटर सुविधा उपलब्ध करवाने हेतु प्रयासरत है। पहले की अपेक्षा विभिन्न सरकारे भी इस ओर अत्यधिक गंभीरतापूर्वक विचार कर सार्थक प्रयास कर रही हैं।

यूँ तो बहुत पहले से ही शिक्षा के क्षेत्र में अलग-अलग उपकरणों का प्रयोग किया जाता रहा है, जैसे— रेडियो, टेलीविजन इत्यादि। किंतु कंप्यूटर के आने से इस क्षेत्र में आकस्मिक एवं तीव्र परिवर्तन आए हैं। कंप्यूटर के बाद यदि ये क्षेत्र किसी तकनीक से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है तो वो है इंटरनेट। इंटरनेट के प्रादुर्भाव ने इस क्षेत्र को लगभग पूरा बदल-सा दिया है। इंटरनेट के आने से पहले शिक्षण-अधिगम में बहुत सारी सीमाएँ एवं परिसीमाएँ थीं। आइए, पहले इन्हीं की चर्चा करें।

पारंपरिक शिक्षण-अधिगम में सीमाएँ एवं परिसीमाएँ

समय-परिसीमा

कक्षा शिक्षण-अधिगम में समय सबसे बड़ी परिसीमा रहा है। आमतौर पर किसी भी विद्यालय का दैनिक कार्य-कालांश पाँच से आठ घंटे का होता है और इस समय में लगभग छह से आठ कालांश होते हैं। एक कालांश लगभग 35 – 50 मिनट का होता है। एक कालांश में यदि एक अध्यापक आता है और अगर कक्षा में लगभग 35 विद्यार्थी हैं तो अनुमान लगाएँ कि प्रत्येक विद्यार्थी को कितना समय मिला, वास्तव में, बहुत ही कम। क्या इतना समय अधिगम के लिए काफ़ी है? यही समय-परिसीमा है जो पारंपरिक कक्षा शिक्षण-अधिगम की एक बड़ी कमी है।

स्थान-परिसीमा

पारंपरिक शिक्षण में शिक्षण-अधिगम हेतु एक स्थान विशेष निर्धारित होता है, जिसे विद्यालय-भवन कहते हैं। इस भवन में भी विभिन्न स्थानों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। आमतौर पर एक विद्यार्थी को किसी एक अध्यापक से विषय संबंधी बातचीत हेतु केवल एक ही कक्षा-स्थान मिलता है वो भी सिर्फ़ एक विशेष कालांश के दौरान। विद्यालय-भवन में अन्य स्थानों पर वह अध्यापक अन्य शैक्षिक गतिविधियों में व्यस्त होता है, इसीलिए वह बातचीत हेतु उपलब्ध नहीं हो पाता, ऐसे में संकल्पना ये बन गई है कि अधिगम एवं शिक्षण केवल उसी नियत स्थान में हो सकता है, जिसे विद्यालय-भवन या कक्षा कहते हैं। अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या अधिगम

वास्तव में स्थान विशेष से बँधा होना चाहिए? या क्या अधिगम केवल स्थान विशेष पर ही होता है?

अवसर-परिसीमा

लगभग 35 विद्यार्थियों की एक कक्षा में एक कालांश में एक विद्यार्थी को अपनी बात कहने या पूछने के लगभग कितने अवसर मिलते हैं? क्या वास्तव में प्रत्येक विद्यार्थी को अवसर मिल भी पाता है या नहीं? अवसर की ये कमी क्या कहीं न कहीं अधिगम में बाधक नहीं है? पारंपरिक कक्षा की ये एक परिसीमा अधिगम को न केवल काफ़ी प्रभावित करती है, बल्कि अवसरों की कमी को उजागर करती है।

लोकतंत्र-परिसीमा या समान अवसर-सीमा

कक्षा में कुछ विद्यार्थी अति-उत्साही एवं अत्यधिक प्रचलित होते हैं, अगर देखा जाए तो हर समय यही कुछेक विद्यार्थी ही या तो कुछ बताते रहते हैं या फिर प्रश्न पूछते रहते हैं। कक्षा में विद्यार्थियों का एक बड़ा तबका ऐसा भी होता है जो अधिकतर शांत ही बैठा रहता है। क्या इनके मन में प्रश्न नहीं होते या ये कुछ कहना नहीं चाहते? या ये कक्षा गतिविधि में हिस्सा नहीं बनना चाहते? वास्तविकता तो यह है कि ये बड़ा हिस्सा भी कहना तो बहुत कुछ चाहता है, परंतु अन्य के कारण कुछ कह नहीं पाता। क्या वास्तव में हम कक्षा में सभी विद्यार्थियों को समान अवसर उपलब्ध करवा पा रहे हैं? क्या सभी को सीखने के समान अवसर नहीं उपलब्ध होने चाहिए? क्या वास्तव में कक्षा में सही मायने में लोकतंत्र है? यदि गौर किया जाए तो नहीं चाहते हुए भी हम सभी को समान अवसर नहीं उपलब्ध करवा पा रहे हैं। ये समान अवसर सीमा भी अधिगम में कहीं न कहीं एक बड़ी बाधक है।

सहयोगी एवं सहकारी-परिसीमा

पारंपरिक कक्षा में हम विद्यार्थियों को सहयोगात्मक एवं सहकारी गतिविधियों के अवसर नहीं के बराबर उपलब्ध करवा पा रहे हैं। बहुत सारे अध्ययन ये बताते हैं कि सहयोगी एवं सहकारी गतिविधियाँ न केवल सीखने-सिखाने में महत्वपूर्ण हैं, बल्कि व्यक्तित्व के अन्य आयामों के विकास में भी ये सहायक हैं। इनके महत्व को देखते हुए ये काफ़ी हद तक आवश्यक हो जाता है कि शिक्षण-अधिगम में विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक सहयोगी एवं सहकारी गतिविधियों के अवसर उपलब्ध करवाए जाएँ व उन्हें इस ओर प्रेरित किया जाए।

प्रतिलिपि-परिसीमा

यदि एक ही विषय-सामग्री को कई विद्यार्थियों द्वारा उपयोग किया जाना हो, जो कि आमतौर पर आवश्यक होता है, तो उसकी कई प्रतिलिपियों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के तौर पर, यदि एक पन्ने की विषय-सामग्री यदि कक्षा में 30 विद्यार्थियों द्वारा उपयोग की जानी है तो कम से कम 15 प्रतिलिपियों की आवश्यकता होगी। किंतु यदि ये सामग्री लेखक अथवा प्रकाशक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित हुई तो इसकी प्रतिलिपि करना इतना आसान नहीं होगा और अकसर ऐसी सामग्री जो उच्च गुणवत्ता वाली हो, काफ़ी महँगी होती है, ये प्रतिलिपि-परिसीमा भी शिक्षण-अधिगम को थोड़ा मुश्किल बना देती है।

सांस्थानिक-परिसीमा

संस्थान के विभिन्न नियम, अनुक्रम व सोपानिकी भी कहीं न कहीं विद्यार्थी एवं शिक्षक के मध्य बातचीत को प्रभावित करते हैं। विचारों के आदान-प्रदान में ये सोपानिकी अहम भूमिका तो निभाती ही है, किंतु इस आदान-प्रदान को कहीं न कहीं बाधित भी करती है। इससे विद्यार्थी स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं, तदैव, ये सांस्थानिक-परिसीमा शिक्षण एवं अधिगम को प्रभावित कर बातचीत एवं विचारों के आदान-प्रदान को सीमित कर कुछ हद तक ऋणात्मक असर उत्पन्न करती है।

ऐसे में समाधान क्या है?

इन सब सीमाओं एवं परिसीमाओं के रहते यह प्रश्न उठना लाज़मी है कि आखिर इसका समाधान क्या है? शिक्षा में तकनीकी के प्रयोग ने इनका हल देने की कोशिश की है। उनमें भी विशेष तौर पर शिक्षा में नयी तकनीकी ने महत्वपूर्ण भूमिका के लिए रास्ते खोले हैं। ऐसी ही दो नयी तकनीक हैं — वेब 2.0 उपकरण एवं मुक्त शैक्षिक संसाधन। इन्हें अंग्रेज़ी में वेब 2.0 टूल्स एवं ओपन एजुकेशनल रिसोर्सज़ के लोकप्रिय नामों से जाना जाता है।

क्या है वेब 2.0 उपकरण?

वेब 2.0 ऑनलाइन वेबसाइट्स की एक श्रेणी है जिसकी तीन विशेषताएँ हैं — पहली, इस वेबसाइट पर अधिकतर सामग्री इसके उपयोगकर्ता द्वारा निर्मित होती है न कि इसके मालिक अथवा अधिकारी द्वारा। अर्थात् कोई भी इसमें विषय-सामग्री का निर्माण कर सकता है। कुछ भी नया निर्मित करने की आज़ादी सभी को होती है। दूसरी, इसमें हरेक को न केवल पढ़ने की स्वतंत्रता होती है, बल्कि लिखने की भी आज़ादी होती है अर्थात् ये केवल दूसरों द्वारा निर्मित की गई सामग्री पढ़ने के लिए ही नहीं है, बल्कि कोई भी इसमें कुछ लिख भी सकता है। तीसरी और अति महत्वपूर्ण यह विशेषता है कि इसमें निर्माणकर्ता एवं उपयोगकर्ता के बीच का रिक्त स्थान लगभग खत्म हो जाता है। जो एक समय निर्माणकर्ता है, वहीं दूसरे समय उपयोगकर्ता है और इसी प्रकार किसी और समय ये भूमिका परस्पर बदल जाती है।

वेब 2.0 उपकरण के कुछ उदाहरण

वेब 2.0 के कुछ उदाहरणों पर चर्चा करें तो इनमें कुछ प्रमुख नाम गूगल एप्लीकेशंस, एल्ल्युमिनेट, क्लासरूम 2.0, विज़-आईक्यू, स्कोप, लर्न-सेंट्रल, ब्लैकबोर्ड एवं आइडेंटिका इत्यादि के आते हैं। गूगल एप्लीकेशंस विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों हेतु विभिन्न विशिष्ट एप्लीकेशंस की सुविधा प्रदान करता है। गूगल ग्रुप उन्हीं एप्लीकेशंस में से एक है, जो न केवल ऑनलाइन समूह बनाने की सुविधा प्रदान करता है, बल्कि समूह पर दस्तावेज़ों, चित्र, चलचित्र इत्यादि का आदान-प्रदान करने व विचार-विमर्श करने की भी सुविधा प्रदान करता है। इसी प्रकार, गूगल ड्राइव कई प्रकार के दस्तावेजों का निर्माण करने, उन्हें संपादित करने व समूह में उत्पादित करने की सुविधा प्रदान करता है। एल्ल्युमिनेट, क्लासरूम 2.0, विज़-आईक्यू, स्कोप, लर्न-सेंट्रल एवं ब्लैकबोर्ड इत्यादि से शिक्षण-अधिगम हेतु न केवल ऑनलाइन कक्षाएँ चलाई जा सकती हैं, बल्कि इनकी सहायता से विचार-विमर्श कर जानकारी एवं ज्ञान का विभिन्न रूपों में आदान-प्रदान भी किया जा सकता है।

आइडेंटिका अपने विचारों को बहुत ही कम शब्दों में अथवा एक लघु शब्द-सीमा के साथ व्यक्त एवं दूसरों के साथ साझा करने की सुविधा प्रदान करता है, जो सारगर्भित अभिव्यक्ति की संकल्पना पर आधारित है। इनके विभिन्न उपयोगों को देखते हुए कहा जा सकता है कि शिक्षण-अधिगम में ये सभी बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

मुक्त शैक्षिक संसाधन क्या हैं?

मुक्त शैक्षिक संसाधन अथवा ओ.ई.आर. ऐसी कोई भी शैक्षणिक, अधिगम एवं शोध सामग्री अथवा संसाधन होते हैं, जो आम जन के क्षेत्राधिकार में उपलब्ध हों व इस प्रकार वितरित किए जाएँ कि दूसरों द्वारा बिना कोई मूल्य चुकाए प्रयोग किए जा सकते हों। यदि सारगर्भित रूप से कहा जाए तो इसमें चार विशेषताएँ होती हैं — पुनरुपयोग (जो है, जैसा है, उसी रूप में बिना कोई परिवर्तन किए उपयोग की स्वतंत्रता), पुनर्कारित (आवश्यकता के आधार पर परिवर्तन कर उपयोग की स्वतंत्रता), पुनर्मिश्रण (आवश्यकता के आधार पर मूल रूप में उपलब्ध सामग्री या परिवर्तित सामग्री को अन्य सामग्री के साथ मिलाकर उपयोग की स्वतंत्रता), पुनर्वितरण (मूल रूप में उपलब्ध सामग्री या परिवर्तित सामग्री को अन्य लोगों के साथ वितरित करने की स्वतंत्रता)। यही विशेषताएँ मुक्त शैक्षिक संसाधन को शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में विशेष एवं अत्यधिक लाभकारी बनाती हैं। मुक्त शैक्षिक संसाधनों में पूर्ण पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री, मॉड्यूल्स, पाठ्यपुस्तकें, वीडियो, जाँच-सामग्री, शिक्षण-अधिगम सामग्री, सॉफ़्टवेयर, लाइसेंस, ऑनलाइन व ऑफ़लाइन उपकरण और शिक्षा के क्षेत्र में अन्य सहायक-सामग्री या तकनीकी इत्यादि शामिल हैं अर्थात् इसका क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है और ऐसे सभी प्रकार के संसाधन इसमें शामिल हैं जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षा से कोई न कोई संबंध हो।

मुक्त शैक्षिक संसाधन के कुछ उदाहरण

मुक्त शैक्षिक संसाधन के कुछ प्रमुख उदाहरणों में एडमोडो, विकिस्पेसेस, मूडल, महारा, जोरम, ओपन क्लिपआर्ट, कोर्सरा, आर-कैम्पस, एन.आर.ओ.ई.आर., स्वयम्, स्वयम् प्रभा, ई-पाठशाला, ई-पीजी पाठशाला इत्यादि आते हैं जिनके उपयोग व प्रयोग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। एडमोडो एक प्रकार का ऑनलाइन कक्षा-कक्ष है जिस पर वे सभी कार्य किए जा सकते हैं जो कि एक कक्षा में संभव व अनुमानित होते हैं। विकिस्पेसेस एक प्लैटफ़ॉर्म प्रदान करता है, जहाँ सभी मिलकर कुछ नया दस्तावेज़ निर्मित, संपादित व साझा कर सकते हैं। मूडल एक अन्य विशिष्ट प्लैटफ़ॉर्म है जो कि कोई पाठ्यक्रम चलाने अथवा ऑनलाइन कक्षा के लिए प्रयोग किया जा सकता है। महारा के द्वारा ऑनलाइन मूल्यांकन बड़े ही सुविधाजनक ढंग से किया जा सकता है। जोरम पर विभिन्न प्रकार के एवं विभिन्न विषयों से संबंधित जर्नल्स उपलब्ध हैं जो कि शोध हेतु एवं कुछ नित-नया सीखने हेतु सहायक हो सकते हैं। ओपन क्लिपआर्ट से विभिन्न चित्र मिल सकते हैं, जिनका आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है। कोर्सरा पर अधिगम हेतु विभिन्न पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं एवं आर-कैम्पस एक सर्व-समावेशी ऑनलाइन प्लैटफ़ॉर्म है, जहाँ पर

रूबरिक से लेकर ई-पोर्टफ़ोलियो निर्माण तक सब कुछ संभव है। एन.आर.ओ.ई.आर., एन.सी.ई.आर.टी. का नवीन एवं लोकप्रिय प्लैटफ़ॉर्म है जिस पर विभिन्न रूपों में लगभग हर प्रकार के मुक्त शैक्षिक संसाधन उपलब्ध हैं। स्वयम् व स्वयम् प्रभा स्व-अध्ययन हेतु उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ मुक्त शैक्षिक संसाधनों में से एक है, जिन पर अनगिनत पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं एवं प्रत्येक दिन के साथ इनमें लगातार वृद्धि हो रही है। ई-पाठशाला जहाँ विद्यालय स्तर की शिक्षा पर केंद्रित है, वहीं ई-पीजी पाठशाला स्नातकोत्तर स्तर हेतु मुक्त शैक्षिक अधिगम-संसाधन उपलब्ध कराती है।

वेब 2.0 उपकरण एवं मुक्त शैक्षिक संसाधन शैक्षिक समस्याओं का समाधान कैसे करते हैं?

इनके द्वारा विद्यार्थी एवं अध्यापक कभी भी बिना किसी समय-बाधा के आपस में बात कर सकते हैं, कभी भी, कहीं भी रहते हुए आपस में विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं, इनके द्वारा सभी को अवसर व समान अवसर उपलब्ध होते हैं, लोकतंत्र की अवधारणा शिक्षण-अधिगम में वास्तव में क्रियान्वित होती है। सहयोगात्मक एवं सहकारी गतिविधियों के लिए अधिक-से-अधिक स्थान, समय एवं अवसर उपलब्ध होते हैं। विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं कि वे अपनी बात सभी के साथ साझा कर सकें। विद्यार्थी एवं अध्यापक दोनों के पास स्वतंत्रता उपलब्ध होती है कि वे न केवल गुणवत्तापूर्ण सामग्री का निर्माण एवं विकास कर सकें, अपितु इसकी चाहे जितनी प्रतिलिपियाँ भी करवाकर वितरित कर सकें। अतः आप इंटरनेट की मदद से उपलब्ध विभिन्न प्रकार के वेब 2.0 उपकरण व मुक्त शैक्षिक संसाधनों की खोज करें, उन्हें सूचीबद्ध करें और इनमें से कम से कम दो उपकरणों एवं संसाधनों का प्रयोग करने का प्रयास करें।

राष्ट्रीय आई.सी.टी. नीति व राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के शैक्षिक प्रौद्योगिकी एवं आई.सी.टी. पर प्रभाव

राष्ट्रीय आई.सी.टी. नीति (2012) के तहत न केवल मुक्त शैक्षिक संसाधन के निर्माण एवं प्रसार पर प्रयास किए जा रहे हैं, बल्कि विद्यालय स्तर पर भी आई.सी.टी. एवं मुक्त शैक्षिक संसाधन के प्रसार हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार एवं सम्मान भी प्रदान किए जा रहे हैं। यही कारण है कि (मुक्त शैक्षिक संसाधन) विद्यालय स्तर पर भी दिनों-दिन लोकप्रिय, प्रचारित एवं प्रसारित हो रहे हैं एवं शिक्षण-अधिगम, शिक्षा-मूल्यांकन एवं शिक्षा-प्रबंधन में इनकी महत्ता समझी जा रही है। इसी नीति के परिणामस्वरूप युवाशक्ति अध्यापक के रूप में विद्यालय में आई.सी.टी. के अधिकाधिक प्रयोग को खुले दिल से स्वीकार कर रही है, जिसमें वेब 2.0 उपकरण भी शामिल है और मुक्त शैक्षिक संसाधन भी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 खुले दिल से स्वीकार करती है कि आई.सी.टी. शैक्षिक प्रौद्योगिकी के अंतर्गत ही प्रारंभ हुआ है और ये इसी की एक शाखा मात्र है, किंतु आने वाले समय में इसकी महत्ता व शिक्षा में इसका अनुप्रयोग बहुत ही वृहत् स्तर पर दिखाई देने वाला है एवं मुक्त शैक्षिक संसाधन की इसमें अवश्यंभावी महत्वपूर्ण भूमिका होने वाली है। यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संसाधनों की कमी से जूझ रहे अंतिम

अधिगमकर्ता तक शिक्षण-अधिगम यदि कोई पहुँचा सकता है तो अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण वह मुक्त शैक्षिक संसाधन ही है और इसी से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का "शैक्षिक प्रौद्योगिकी सभी के लिए" का सपना साकार हो सकता है। वास्तव में, वेब 2.0 के रूप में हो या मुक्त शैक्षिक संसाधन के रूप में, शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में देश में वृहत् स्तर पर शैक्षिक प्रौद्योगिकी व आई.सी.टी. के अभूतपूर्व अनुप्रयोगों का श्रेय मुख्य रूप से इस नीति व रूपरेखा की दूरगामी सोच को ही जाता है।

निष्कर्ष

शिक्षा में बढ़ती तकनीकी, इसका अधिकाधिक न्यायसंगत प्रयोग, इसमें नवाचार एवं नयी-नयी प्रौद्योगिकी यथा वेब 2.0, मुक्त शैक्षिक संसाधन, इत्यादि ने शिक्षण-अधिगम को मानो पंख लगा दिए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में नित नयी संभावनाएँ खुल रही हैं, नित नए रूप में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में मदद कर रही हैं व नए-नए सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। इन्हीं परिणामों से उत्साहित होकर न केवल राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी शिक्षा में तकनीकी पर अत्यधिक ध्यान दिया जा रहा है। बदलते युग में अब हमारी बारी है कि हम शिक्षक एवं अधिगमकर्ता के रूप में अपने शिक्षण एवं अधिगम में तकनीकी का न्यायसंगत रूप से अधिकाधिक प्रयोग कर अपना सकारात्मक योगदान दें और शिक्षा के नए युग से कदम-से-कदम मिलाकर चलें।

संदर्भ

कंवरिया, वी.के. 2015. आई.सी.टी. ऑग्मेंटेड एलीमेंट्री टीचिंग एंड लर्निंग. *प्राइमरी टीचर*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

———. 2012. *राष्ट्रीय आई.सी.टी. नीति*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

भारतीय समाज में किन्नरों की शैक्षिक एवं सामाजिक अपवंचन की दशा एवं दिशा

अभिषेक श्रीवास्तव*

प्राचीन काल में किन्नरों को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त था। इन्हें ब्रह्माजी की छाया से उत्पन्न माना जाता है। 'महाभारत' में भी शिखंडी नामक किन्नर का उल्लेख मिलता है। भारत में किन्नरों की विस्तृत शृंखला हिजड़ा, अरविनी, कोठी, जोगाट, एवं शिवभक्त आदि के रूप में है। वर्तमान समय में इनकी आजीविका का प्रमुख साधन मांगलिक अवसरों पर नृत्य-संगीत, भीख माँगने तक ही सीमित रह गया है। जिसका प्रमुख कारण सामाजिक एवं शैक्षिक अपवंचन ही है। वर्तमान समय में किन्नर समुदाय को विभिन्न प्रकार के सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। जिनमें सार्वजनिक स्थलों पर विश्रामालय एवं शौचालयों का अभाव सबसे बड़ी समस्या है, जो उनके उपहास का कारण भी बन जाता है। शैक्षिक रूप से इन्हें विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में समान अवसर प्राप्त न होना आदि भी है। किन्नरों की इस दयनीय दशा को दूर करने के लिए 15 अप्रैल, 2014 को माननीय उच्चतम न्यायालय ने ऐतिहासिक फ़ैसला लिया। जिसके बाद किन्नरों को अपवंचित वर्ग में शामिल करते हुए तीसरे लिंग का दर्जा प्रदान किया गया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009 के तहत निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का लाभ प्राप्त हो गया। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा किए जा रहे प्रयासों से किन्नरों को पूरे भारतवर्ष में चिकित्सकीय, सामाजिक एवं शैक्षिक लाभ प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। भारत सरकार द्वारा पारित ट्रांसजेंडर बिल, 2016 एवं राज्य सरकारों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा सामाजिक एवं शैक्षिक सुधार का प्रयास किया जा रहा है। इसके उपरांत भी वर्तमान भारतीय समाज में तीसरे लिंग, किन्नरों के प्रति पर्याप्त भिन्नता प्राप्त है। अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता का अधिकार किन्नरों को यह अधिकार प्रदान करता है कि लिंग के आधार पर भिन्नता नहीं की जा सकती। अनुच्छेद 21 में वर्णित शिक्षा का अधिकार भी उन्हें समान रूप से प्राप्त है। परंतु किन्नरों के सामाजिक अपवंचन के कारण उन्हें यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका है। सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ आज भी ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की पहुँच से दूर हैं। ऐसे में सरकार, समाज, परिवार, शिक्षकों आदि को मिलकर इस दिशा में सार्थक प्रयास करना पड़ेगा, जिससे उनको मुख्यधारा में जोड़ा जा सके। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि किन्नरों की वास्तविक परिभाषा ही किसी को ज्ञात नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो किन्नरों के अपवंचन को दूर कर सकता है एवं उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ सकता है।

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (बी.एड.), अवधूत भगवान राम पी. जी. कॉलेज, अनपरा-सोनभद्र, वाराणसी 321225

प्रस्तावना

प्राचीन काल में किन्नरों को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त था। प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजी की छाया से मानी जाती है। महाभारत काल में भी शिखंडी नामक किन्नर का उल्लेख मिलता है। सन् 1871 से पहले किन्नरों को *ट्रांसजेंडर* के रूप में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे, परंतु सन् 1871 में किन्नरों को *क्रिमिनल ट्राइब्स* अर्थात् 'जरायम पेशा जनजाति' के रूप में अधिसूचित कर दिया गया। वर्तमान समय में भारत एक लोकतांत्रिक देश है और कानूनी रूप से यहाँ रहने वाले सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं। भारत सरकार ने किन्नरों को सन् 1951 में *क्रिमिनल ट्राइब्स* से बाहर निकाल दिया, परंतु किन्नरों की कोई लैगिंक पहचान न होने के कारण उन्हें अपमान, अनादर एवं समाज की मुख्यधारा से वंचित होते हुए शिक्षा से भी वंचित होना पड़ता था। जनगणना 2011 के अनुसार, भारत में 4.9 लाख तीसरे लिंग के नागरिक हैं, जो वर्तमान में भी सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से अति पिछड़े हुए हैं। वर्तमान में किन्नरों का कार्य मांगलिक कार्यों में नृत्य, संगीत प्रस्तुत करने तथा भीख माँगने तक ही सीमित है, जो इनके शैक्षिक रूप से पिछड़ेपन का प्रमुख कारण है। जबकि भारत सरकार द्वारा उन्हें समस्त स्कूलों एवं कॉलेजों में तीसरे लिंग के रूप में समस्त शैक्षिक क्रियाकलापों में प्रतिभागिता हेतु समान अवसर प्रदान किए गए हैं। सरकार द्वारा 25 प्रतिशत आरक्षण का भी प्रावधान है। परंतु वर्तमान में भी 'किन्नर शिक्षा' रोज़गार की मुख्यधारा से वंचित है।

वर्तमान समय में भारत ने सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास यात्राएँ की हैं एवं सामाजिक ताने-बाने, रहन-सहन, शिक्षा व आर्थिक परिस्थितियों में सकारात्मक वृद्धि अर्जित की है। परंतु आज भी समाज के सभी तबकों का विकास समान रूप से नहीं हो पाया है। विकास की इस प्रक्रिया में तीसरे लिंग का समुदाय (किन्नर) आज भी हाशिये पर ही खड़ा है। राजेश और नावेद (2013) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "किन्नर समुदाय, देश का ऐसा कमजोर समुदाय है, जो मानव विकास में अनेक कारणों से पीछे रह गया है।" सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आरक्षण एवं शिक्षा के अधिकार आदि अधिनियमों के बावजूद भी असमानता की भयावह स्थिति बनी हुई है। किन्नर समुदाय की अधिकांश आबादी आज भी समाज की मुख्यधारा से दूर खड़ी अपने विकास हेतु कातर नज़रों से सरकार एवं सभ्य समाज की ओर टकटकी लगाए देख रही है। जबकि सभ्य समाज उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने से अपवंचित रखता है। किन्नर समुदाय के प्रति विद्यालय एवं शिक्षकों की उदासीनता के साथ-साथ गरीबी, भेदभाव, लैंगिक हिंसा आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं, जिन्हें किन्नरों के पिछड़ेपन के लिए ज़िम्मेदार माना जा सकता है।

प्राय: किन्नर समुदाय को दैनिक जीवन हेतु संघर्ष करना पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, जैसे — स्कूल/कॉलेज, स्वास्थ्य सेवाओं, रोज़गार आदि में उन्हें सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। प्रतिदिन वे सामाजिक उपहास को झेलते हुए अपमान एवं कलंक के उच्च स्तर का सामना करते

हैं। जिससे उनके अंदर आत्मसम्मान, स्वत्व-बोध एवं सामाजिक ज़िम्मेदारियों की भावना का विकास नहीं होने पाता एवं वे हीनभावना से ग्रसित हो जाते हैं। आज आवश्यकता है कि किन्नर समुदाय को समाज की मुख्यधारा में शामिल किया जाए और सभी स्तरों पर उनके शोषण को खत्म करने की व्यवस्था भी सुनिश्चित की जाए।

भारतवर्ष में इनकी विस्तृत शृंखला है। इनकी पहचान हिजड़ा, अरविनी, कोठी, जोगाट एवं शिव भक्त आदि के रूपों में की जाती है। जिन्हें प्राचीन भारत में अति श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त था। हिजड़ा एक फ़ारसी शब्द है, जिसका प्रयोग भारत में किन्नर समुदाय के लिए प्रमुखता से किया जाता है। अरविनी शब्द का प्रयोग ऐसे किन्नरों के लिए किया जाता है, जो पुरुष से महिला लिंग पुन:संयोजन शल्यक्रिया द्वारा धारण करते हैं। कोठी शब्द का प्रयोग उनके लिए किया जाता है, जो समान लिंगी मैथून में मादा/नर की भूमिका का निर्वहन करते हैं और वेशभूषा एवं आचार-व्यवहार भी वैसा ही करते हैं। अरविनी, जोगाट/जोगप्पा महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में होते थे। जो पुरुष लिंग से महिला में परिवर्तित हो जाते थे एवं स्वयं का जीवन एक विशेष देवता येलम्मा की सेवा में समर्पित कर देते थे। आंध्र प्रदेश में ये शिव भक्त के रूप में जाने जाते थे, ये ऐसे पुरुष होते थे जो भगवान शिव को पति रूप में स्वीकार कर लेते थे एवं पुजारी व ज्योतिषी के रूप में प्रतिष्ठित रहते थे। सत् शिवम् (2012) ने हिजड़ों को परिभाषित करते हुए कहा है कि "किन्नर किसी भी उम्र या लिंग के ऐसे व्यक्ति हैं जिनका व्यक्तित्व, व्यक्तिगत विशेषताओं या रूढ़िवादी मान्यताओं से अलग है कि कैसे पुरुष या स्त्री की मान्यता प्रदान की जाए।" आदिकाल से किन्नर संसार की समस्त मानव सभ्यताओं की जातियों एवं वर्गों में विद्यमान रहे हैं। राज कुमार (2016) ने कहा कि व्यापक रूप में इन्हें 'लिंग से परे' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

वर्तमान शैक्षिक एवं सामाजिक दशा

भारतीय संविधान ने हाल ही में किन्नरों को तीसरे लिंग की मान्यता प्रदान की है। नयी लैंगिक मान्यता के बावजूद आज भी किन्नरों की एक बड़ी आबादी सामाजिक भागीदारी से वंचित है। संवैधानिक एवं कानूनी समानता की गारंटी के बाद भी भारतीय समाज इन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक स्थानों की पहुँच से दूर रखे हुए है। भारत में किन्नरों हेतु औपचारिक शिक्षा व्यवस्था प्रचलित नहीं है। ये विद्यालय एवं अपने परिवार के वातावरण में अपने को अपवंचित ही पाते हैं, जो इनकी शिक्षा, रोज़गार एवं भविष्य के लिए जोखिम उत्पन्न करता है। एक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि किन्नर समाज में सबसे अधिक अशिक्षित एवं वंचित हैं। किन्नरों की औसत शैक्षिक योग्यता मैट्रिक ही है। किन्नरों के प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन की दर काफ़ी कम एवं विद्यालय छोड़ने वालों की दर काफ़ी अधिक है, जिसके कारण किन्नर बहुत ही मुश्किल से ही शिक्षित हो पाते हैं। समाज से वंचित होने के कारण शैक्षिक संस्थाओं में उत्पीड़न का सामना करते हैं जो इन्हें विद्यालय छोड़ने पर मजबूर कर देता है। जिसके कारण किन्नर भीख माँगने के लिए विवश हो जाते हैं। सरकार को चाहिए कि वह किन्नरों की सामाजिक

स्थिति को देखते हुए समावेशी एवं प्रौढ़ शिक्षा अनिवार्य रूप से संचालित करे। इन असमानताओं के बावजूद बहुत से किन्नर भारत में उच्च पदों पर भी प्रतिष्ठित हैं। मनाबी बंदोउपाध्याय पश्चिम बंगाल में एक सरकारी कॉलेज में प्रधानाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हैं और अमृता अल्पेश सोनी भारतीय एड्स कंट्रोल बोर्ड में पंजाब, हरियाणा एवं छत्तीसगढ़ राज्यों के लिए वकील अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

भारत के कुछ राज्य सरकारों ने किन्नरों के विकास के लिए कार्य करने की शुरुआत कर दी है। जिसमें तमिलनाडु एक ऐसा इकलौता राज्य है, जिसने किन्नरों को समाज की मुख्यधारा में जोड़ने की योजना प्रारंभ की है। इस योजना का नाम अरविनी वेलफ़ेयर पॉलिसी है। इसके अंतर्गत वे सरकारी अस्पतालों में पुरुष से महिला बनने की शल्य चिकित्सा मुफ़्त प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही साथ आवास एवं उच्च शिक्षा के लिए पूर्ण छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी है। यह 2008 में *ट्रांसजेंडर कल्याण बोर्ड* की स्थापना करने वाला पहला राज्य है, जिसके अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों एवं आय सृजित करने वाले कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है। मार्च 2009 में तमिलनाडु सरकार ने किन्नरों के लिए 'मानुश' के नाम से *हेल्पलाइन* की भी शुरुआत की। छत्तीसगढ़ सरकार ने भी एक वेलफ़ेयर योजना के तहत लगभग 3000 किन्नरों को नशा मुक्त सशक्त बनाने का कार्य किया। त्रिपुरा किन्नरों के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु प्रतिमाह ₹ 500 की सहयोग राशि उपलब्ध करा रहा है। 1 अक्तूबर, 2015 को पश्चिम बंगाल सरकार ने किन्नरों के प्रति भेदभाव समाप्त करने के लिए सिविक पुलिस स्वयं सेवी बल में किन्नरों को भर्ती करने का अनुमोदन भी प्रदान किया। किन्नरों के सामाजिक एवं शैक्षिक सुधार के क्षेत्र में किए जा रहे प्रयासों का उल्लेख इस प्रकार है —

1. *उच्चतम न्यायालय फ़ैसला*

15 अप्रैल, 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने 'नेशनल लिगल सर्विस अथॉरिटी वर्सेस यूनियन ऑफ़ इंडिया एंड अदर्स (ना.ल.सा.)' की सुनवाई करते हुए किन्नर समुदाय के पक्ष में एक अहम फ़ैसला सुनाया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि शिक्षण संस्थानों में दाखिला लेते वक्त या नौकरी देते वक्त ट्रांसजेंडर की पहचान तीसरे लिंग के रूप में की जाए। किन्नरों या तीसरे लिंग की पहचान के लिए कोई कानून न होने की वजह से उनके साथ शिक्षा या नौकरी के क्षेत्र में भेदभाव नहीं किया जा सकता। यह पहली बार हुआ है कि जब तीसरे लिंग को औपचारिक रूप से पहचान मिली है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि तीसरे लिंग को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ.बी.सी.) के अंतर्गत माना जाएगा तथा इन्हें शिक्षा और नौकरी में ओ.बी.सी. के तौर पर आरक्षण प्रदान किया जाए। सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र और राज्य सरकारों से कहा कि तीसरे जेंडर वाली कम्युनिटी के सामाजिक कल्याण के लिए योजनाएँ चलाई जाएँ और उनके प्रति समाज में हो रहे भेदभाव को खत्म करने के लिए जागरूकता अभियान भी चलाए जाएँ। इनके लिए *स्पेशल पब्लिक टॉइलेट* बनाए जाएँ और साथ ही उनके स्वास्थ्य से जुड़े

मामलों को देखने के लिए स्पेशल विभाग बनाए जाएँ। अगर कोई अपना लिंग परिवर्तन करवाता है तो उसे उसके नये लिंग की पहचान मिलेगी और इसमें कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय का यह ऐतिहासिक फ़ैसला निश्चित ही किन्नरों के शैक्षिक एवं सामाजिक समानता के विकास यात्रा में मील का पत्थर साबित होगा।

2. *आर. टी. ई. एक्ट, 2009*

भारत सरकार द्वारा 01 अप्रैल, 2010 को निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 लागू किया गया। इस अधिनियम के अनुसार 6 से 14 वर्ष के प्रत्येक बालक को अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक अपने आस-पास के विद्यालय में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा, जो आर. टी. ई. अधिनियम, 2009 के भाग 3 (1) में वर्णित है। साथ ही साथ निजी विद्यालयों में सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक एवं लैंगिक रूप से पिछड़े बालकों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। माननीय उच्च न्यायालय के नेशनल लिगल सर्विस अथॉरिटी पर फ़ैसले के बाद तृतीय लिंग के सभी विद्यार्थी भी उक्त श्रेणी में आ गए हैं। उक्त अधिनियम के अनुपालन में दिल्ली के राज्यपाल ने आर.टी.ई एक्ट, 2009 (35) को ध्यान में रखते हुए ट्रांसजेंडर बालक को डिसएडवांटेज ग्रुप में मानते हुए 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान कर दिया है, जिसका सीधा लाभ किन्नर बालकों को मिलना सुनिश्चित हो गया है।

3. *सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा किए जा रहे प्रयास*

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के उत्थान एवं विकास के लिए अनेक प्रयास एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया है। 23 अगस्त, 2013, 6 नवम्बर, 2013, 29 नवम्बर, 2013 व 3 जनवरी, 2014 को सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय ने राज्य सरकार, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों एवं विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसरों के साथ ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के सामाजिक कलंक, विभेद, शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य एवं रोज़गार की संभावनाओं की तलाश के लिए संगोष्ठियों का आयोजन किया, जिसमें राज्य सरकारों एवं विद्वानों से सुझाव प्राप्त हुए। सुझावों के आधार पर ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय का कार्य निर्धारण किया गया। जो निम्न है—

- सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए भारत सरकार के नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करेगी, जो विभिन्न मंत्रालयों, एजेंसियों व राज्य सरकारों के मध्य समन्वय स्थापित करेगी।
- सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय, मानव विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार मंत्रालय, हाउसिंग एंड अरबन पॉवर्टी एलिवेशन, रूरल डिवेलपमेंट,

लेबर एंड इंपावरमेंट और डिपार्टमेंट ऑफ़ फ़ाइनेंशियल सर्विस मंत्रालयों, राज्य सरकारों एवं ट्रांसजेंडर के प्रतिनिधियों के साथ अंतर मंत्रालय समिति की स्थापना करना जो समेकित रूप से ट्रांसजेंडर कल्याण का कार्य संपादित करेगी।

- राष्ट्रीय ट्रांसजेंडर परिषद् का गठन राष्ट्रीय परिषद् के समरूप करना।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की जनसंख्या की गणना एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति का पता लगाकर स्थितियों में अपेक्षित सुधार करना।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए अम्ब्रेला योजना आरंभ करना, जिसके अंतर्गत ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की भाँति छात्रवृत्ति, स्वरोज़गार हेतु लोन पर 25 प्रतिशत की छूट, 40 से 60 वर्ष के ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए पेंशन एवं ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए कार्यरत संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के मुद्दों के प्रति समाज में संवेदनशीलता विकसित करने के लिए प्रचार-प्रसार करना।

4. *द ट्रांसजेंडर पर्सन (प्रोटेक्शन राइट) बिल, 2016*

20 जुलाई, 2016 को माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 'द ट्रांसजेंडर पर्सन (प्रोटेक्शन राइट) बिल, 2016' पारित किया गया, जिसकी मुख्य बातें निम्न हैं—

- तृतीय लिंग को परिभाषित करना।
- तृतीय लिंगीय व्यक्तियों के भेदभाव पर रोक लगाना।
- स्वयं की पहचान का अधिकार।
- तृतीय लिंगीय व्यक्तियों को पहचान पत्र प्रदान करना।
- शिक्षा, रोज़गार, नियुक्तियों व पदोन्नति में भेदभाव को रोकना।
- नेशनल काउंसिल ऑफ़ ट्रांसजेंडर की स्थापना करना।
- अवमानना करने वालों के लिए दंड का प्रावधान।

5. *विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे प्रयास*

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देश के बाद विभिन्न राज्य सरकारों ने तीसरे लिंग के उत्थान के लिए कार्य करना प्रारंभ कर दिया है। केरल सरकार ने 12 से 14 नवंबर (2015) के मध्य लैगिंक समानता विषय पर पहला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। जिसमें देश की पहली ट्रांसजेंडर नीति की घोषणा की गई। ट्रांसजेंडर नीति की मुख्य बातें निम्न हैं—

- ट्रांसजेंडर बच्चों के अभिभावकों को जागरूक करने के लिए विशेष परामर्श और अन्य स्वास्थ्य सेवाएँ देने का प्रावधान।
- धारा 375 में बदलाव करते हुए महिलाओं के साथ-साथ ट्रांसजेंडर को भी अब यौन अपराधों से पीड़ित मानने का प्रावधान।

- प्रत्येक ज़िले में 'ट्रांसजेंडर कल्याण बोर्ड' का गठन किया जाए एवं उसमें एन.जी.ओ. की भागीदारी सुनिश्चित की जाए तथा कम-से-कम पाँच व्यक्ति ट्रांसजेंडर समुदाय के सदस्य होने का प्रावधान।
- शिक्षण संस्थानों में बदलाव—राज्य के समस्त शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में लैंगिक भेदभाव को रोकने के लिए इकाइयाँ बनाने, जिसमें विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रावधान।
- 24 घंटे ट्रांसजेंडर हेल्पलाईन प्रारंभ करने का प्रावधान।
- इंदिरा आवास योजना के तहत घर बनाने के लिए प्रावधान।
- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना में शामिल करने का प्रावधान।
- पचपन वर्ष से अधिक उम्र के निराश्रित ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को पेंशन एवं स्वरोज़गार के लिए अनुदान देने का प्रावधान।

आंध्र प्रदेश सरकार ने ट्रांसजेंडरों के लिए कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा की, इसके अंतर्गत प्रतिमाह ₹ 1000 पेंशन एवं मकान दिया जाएगा। राजस्थान सरकार ने 'राजस्थान ट्रांसजेंडर बोर्ड' का गठन किया, जिसमें यह फ़ैसला लिया गया कि ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को सरकार अलग से एक प्रमाण-पत्र जारी करेगी जो समस्त सरकारी लाभों के लिए मान्य होगा। ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के नाम से जन्म एवं मृत्यु प्रमाण-पत्र जारी किए जाएँगे। इनके लिए अलग से हॉस्टल एवं सरकारी योजनाएँ चलाई जाएँगी। मध्यप्रदेश सरकार ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया तथा इन्हें पिछड़े वर्ग के समान छात्रवृत्ति एवं आरक्षण देने का प्रावधान किया। श्री/श्रीमती के तर्ज़ पर ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के नाम से पहले 'कि' लगाने का प्रस्ताव दिया गया और साथ ही साथ किन्नरों के लिए विशेष शौचालय बनवाने का प्रावधान किया गया। 2 अक्तूबर, 2017 को मुख्यमंत्री द्वारा देश के पहले ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के शौचालय का उद्घाटन किया गया। ओडिशा सरकार ने तृतीय प्रकृति सुरक्षा अभियान नामक योजना की घोषणा की। इस योजना के अंतर्गत यह घोषणा की गई कि तृतीय लिंग के विद्यार्थी को 10 महीने के हॉस्टल बोर्ड के लिए ₹ 12000 की छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी। कौशल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत 200 घंटे के पाठ्यक्रम के लिए ₹ 15000 छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी। तीसरे लिंग के बच्चों के माता-पिता को ₹ 1000 मासिक छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी। राज्य सरकारों द्वारा किए जा रहे यह प्रयास अभी वास्तविकता में दिखाई नहीं देते हैं, परंतु यह उम्मीद की जा सकती है कि उक्त प्रयास निश्चित ही सामाजिक समता का आधुनिक अध्याय लिखने में सक्षम होंगे।

किन्नर शिक्षा की चुनौतियाँ

किन्नरों का तीसरे लिंग के रूप में नामकरण स्वयं में एक बड़ी समस्या है, जो इन्हें प्रचलित लिंग स्त्री या पुरुष से भिन्न करता है तथा एक परित्यक्त

समुदाय के रूप में चिह्नित करता है। समाज वर्तमान में भी इन्हें मुख्यधारा से दूर किए हुए है, परंतु यह सुखद है कि सर्वोच्च न्यायालय ने किन्नरों को शिक्षा एवं रोज़गार में समानता प्रदान करते हुए इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी में स्थान दिया है, साथ ही साथ सरकार को यह सुझाव भी प्रदान किया है कि वे तीसरे लिंग को सामाजिक उत्पीड़न से मुक्त करने हेतु सामाजिक जागरूकता अभियान चलाते हुए कल्याणकारी योजनाओं को प्रारंभ करे एवं तीसरे लिंग के लिए अलग से शौचालयों एवं चिकित्सकीय सुविधाएँ प्रदान करने की दिशा में आगे बढ़े। लेकिन इसका लाभ किन्नरों को तभी प्राप्त होगा, जब इन्हें सामाजिक रूप से समान होने की मान्यता मिले एवं इनका शैक्षिक विकास भी सामान्य रूप से होने लगे। किन्नरों के शैक्षिक विकास की प्रमुख चुनौतियों का विवरण इस प्रकार है —

1. **विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में असमान अवसर** — विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में समान शिक्षा के अवसर प्रदान करना एक बड़ी चुनौती है। क्योंकि स्त्री; पुरुष एवं स्त्री-पुरुष विद्यार्थियों के साथ इन्हें शिक्षित करना स्वयं में एक समस्या है। जिसका प्रमुख कारण सामाजिक अस्वीकार्यता है।
2. **पृथक विद्यालयों का अभाव** — किन्नरों के लिए अलग से बालक, बालिका विद्यालय के समान किन्नर विद्यालय नहीं हैं, जिससे किन्नर स्वतंत्र होकर शैक्षिक क्रियाकलाप नहीं कर पाते।
3. **अपमानजनक नामों का प्रयोग** — जैविक भिन्नता के आधार पर व्यक्तियों का नामकरण महिला और पुरुष के रूप में किया जाता है, जिसे सामाजिक दर्जा प्राप्त है। किन्नर कई बार ये समझ नहीं पाते हैं कि उन्हें किस नाम से जाना जाता है, जिससे वह अपने को अपमानित महसूस करते हैं, साथ ही साथ उनके लिए विद्यालयों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों पर सामान्य व्यक्तियों द्वारा अपमानजनक शब्दों का प्रयोग उनके लिए अपमानजनक स्थिति उत्पन्न करता है।
4. **उपयुक्त विश्राम गृहों का अभाव** — समाज हो या कोई भी विद्यालय, विश्राम गृह/कक्ष केवल पुरुषों एवं महिलाओं के लिए ही निर्मित हैं, वहीं किन्नरों के लिए अलग से विश्रामालय का अभाव होता है। ऐसे में किन्नरों के लिए एक बड़ी अपमानजनक स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वह किस विश्रामालय एवं शौचालयों का प्रयोग करें। समाज एवं विद्यालयों में विभिन्न लिंगों के लिए विशेष पहनावा निश्चित है एवं उसी के आधार पर उनके लिंग की भी पहचान की जाती है। कई बार किन्नरों द्वारा पुरुष अथवा महिला शौचालयों का प्रयोग उत्पीड़न एवं अपमान का कारण बन जाता है।
5. **आदर्श व्यक्तित्व का अभाव** — किन्नर स्वयं को विद्यालय एवं समाज में अकेला महसूस करते हैं, क्योंकि उनके जैविक लिंग की समाज अथवा विद्यालयों में न तो आदर्श स्थिति प्राप्त है और न ही उनके पहचान से जुड़े हुए रोचक तथ्य, पुस्तक, सामाजिक क्रियाकलाप हैं। ऐसे में तीसरे लिंग का व्यक्ति समाज में अपनी आदर्श पहचान को प्राप्त करने में विफल हो जाता है।

सुझाव

विद्यालयों में किन्नरों की स्थिति को सुधारने के लिए निम्नांकित कार्य किए जा सकते हैं—

1. **विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा के समान अवसर**—किन्नरों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने चाहिए। इसके लिए विद्यालय प्रशासन, शिक्षकों एवं अभिभावकों को प्रमुख भूमिका का निर्वहन करना पड़ेगा एवं साथी विद्यार्थियों में किन्नर विद्यार्थियों के लिए सहयोगात्मक दृष्टिकोण का विकास करना पड़ेगा। विद्यालय में किन्नरों के लिए खेल, व्यावसायिक एवं रोज़गारपरक शिक्षा आदि के लिए समान अवसर उत्पन्न कराने होंगे।
2. **पृथक विद्यालयों की रचना**—समाज में महिला एवं पुरुष लिंग के विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत विद्यालयों की स्थापना की गई है। वर्तमान में आवश्यकता है कि किन्नरों के लिए भी व्यक्तिगत विद्यालयों की रचना की जाए, जहाँ वह स्वतंत्र होकर अध्ययन कार्य संपादित कर सकें। प्रौढ़ किन्नरों की अशिक्षा को दूर करने के लिए रात्रि अथवा दिवा प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जाए, जिससे निश्चित ही विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या समाप्त हो जाएगी एवं साक्षरता स्तर में भी सुधार होगा।
3. **पृथक विश्राम कक्षों एवं शौचालयों का निर्माण**—विद्यालयी उत्पीड़न का एक प्रमुख कारण किन्नरों के लिए विद्यालयों में विश्राम-कक्ष एवं शौचालयों की पृथक व्यवस्था का न होना है, जिसके कारण किन्नर सदैव उपहास एवं असुविधाओं का सामना करते हैं। विद्यालयों को चाहिए कि वह महिला/पुरुष शौचालयों एवं विश्राम कक्षों की तर्ज पर तीसरे लिंग के लिए भी अलग से इनकी व्यवस्था सुनिश्चित करें।
4. **आर्थिक सहायता**—समाज की मुख्यधारा से दूरी, रोज़गार के असमान अवसर एवं पारिवारिक उपेक्षाओं के कारण किन्नरों की आर्थिक स्थिति अति दयनीय है। सरकार को चाहिए कि किन्नरों की आर्थिक सहायता करते हुए विश्वविद्यालय तक की शिक्षा की मुफ़्त व्यवस्था करे। ऐसे में त्रिपुरा एवं तमिलनाडु सरकार द्वारा उठाए गए कदम सराहनीय हैं।
5. **एन्टि डिसक्रिमिनेशन सेल का गठन**—विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में किन्नरों की सुरक्षा के लिए एन्टि डिसक्रिमिनेशन सेल का गठन किया जाना चाहिए। जिससे किन्नरों के उत्पीड़न में कमी आएगी एवं उनके आत्मविश्वास का भी विकास होगा।
6. **शैक्षिक योजनाओं की पुनर्समीक्षा**—भारत सरकार द्वारा चलाई जाने वाली शैक्षिक योजनओं, जैसे—सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, जन शिक्षा अभियान, आर. टी. ई. एक्ट, 2009 आदि की ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के शिक्षा के संदर्भ में पुन: समीक्षा करने की आवश्यकता है। जिससे इन योजनाओं को ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिए प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जा सके।
   - कॉलेज स्तर पर ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के मुद्दों को पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान करना।

- सामाजिक अपमान, भेदभाव एवं आर्थिक कारणों से विद्यालय छोड़ चुके ट्रांसजेंडर बालकों की पहचान कर उन्हें एवं उनके अभिभावकों की हीनभावना दूर कर फिर से विद्यालय में नामांकित करने की व्यवस्था सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष

संसार के समस्त प्राणी अद्वितीय एवं प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। किसी लिंग, वर्ग, जाति एवं सामाजिक आधार पर उनमें भिन्नता नहीं की जा सकती। वर्तमान भारतीय समाज में तीसरे लिंग किन्नरों के प्रति पर्याप्त भिन्नता प्राप्त है, जिसका संज्ञान लेते हुए भारतीय संविधान में सभी निवासियों को समानता का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता का अधिकार किन्नरों को यह अधिकार प्रदान करता है कि लिंग के आधार पर भिन्नता नहीं की जा सकती। अनुच्छेद 21 में वर्णित शिक्षा का अधिकार भी प्राप्त है। परंतु किन्नरों के सामाजिक अपवंचन के कारण उन्हें यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका है। सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ आज भी ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की पहुँच से दूर हैं। ऐसे में सरकार, समाज, परिवार, शिक्षकों आदि को मिलकर इस दिशा में सार्थक प्रयास करना पड़ेगा। जिससे उनको मुख्यधारा में जोड़ा जा सके। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि किन्नरों की वास्तविक परिभाषा ही किसी को ज्ञात नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो किन्नरों के अपवंचन को दूर कर सकता है एवं उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ सकता है।

संदर्भ

राजेश और एम.डी. असलम नावेद. 2013. *एप्रोच पैपर ऑन एजुकेशन एंड एम्प्लॉयमेंट अपॉर्चुनिटीज़ एंड चेलेंजिंग फ़ॉर ट्रांसजेंडर*. मिनिस्ट्री ऑफ़ सोशल जस्टिस एंड एम्प्लॉयमेंट, गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया.

www.socialjustice.nic.in/pdf/appendix5.

सत्शिवम. 2012. *राइट ऑफ़ ट्रांसजेंडर पीपल, सेन्सटाइज़िंग ऑफ़िसर टू प्रोवाइड एक्सस टू जस्टिस.* http://www.hcmadras.tn.nic.in/jacademy/Article/PSJ -CJO-SPEECH-Royappetah.pdf.

राजकुमार. 2016. एजुकेशन ऑफ़ ट्रांसजेंडर इन इंडिया — स्टेटस एंड चैलेंज. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च इन इकोनॉमिक एंड सोशल साइंस* (आईजेआरईएसएस). वाल्यूम 6, इश्यू 11, नवंबर 2016, पृ. 3.

सेक्शुअली ट्रांसमिटेड इंफ़ेक्शन (एसटीआइएस) आर इंफ़ेक्शन दैट आर स्प्रेड प्राइमरीली थ्रू पर्सन टू पर्सन सेक्शुअल कॉन्टेक्ट, दिअर आर मोर दैन डिफ्रेंट 30 सेक्शुअली ट्रांसमिसिबल बैक्टीरिया, वाइरस एंड पैरासाइटस. http://www.who.int/topics/sexually_transmitted_infections/en/

http://www.aksharsamrat.com/news.php?id=3462&title

https://hi.wikipedia.org/wiki/ f"k{kk dk vf/kdkj

http://righttoeducation.in/sites/default/files/Right%20of%20Children%20to%20Free%20and%20Compulsory%20Education%20Act%202009%20%28Hindi%29.pdf

http://mhupa.gov.in/W_new/EWS_OFFICE_MEMORUNDUM_14_11_2012.pdf

https://timesofindia.indiatimes.com/home/education/news/25-seats-reserved-for-transgender-kids-in-Delhi-schools/articleshow/44827072.cms

The Transgender Persons(Protection of Right) Bill 2016, Statement of objective and Reson Page no.8,www.prsindia.org/uploads/medea/transgender/transgendedr-person-bill-2016.pdf

https:// satyagrah.scroll.in/article/21768/kerala_first_state_transgender_policy

www. Human junction.com/transgender

https://aajtak.intoday.in/story/rajasthan-government-added-transgenders-as-third-gender-1-884751.html

http://naidunia.jagran.com/madhya-pradesh/bhopal-three-percent-reservation-for-transgender-in-government-jobs-madhya-pradesh-207672

http://hindi.firstpost.com/india/bhopal-cm-shivraj-inaugurates-first-community-toilet-for-transgender-using-public-toilets-are-problem-for-transgenders-pr-57797.html

http://newsyojana.com/orissa-yojana/odisha-governments-trinity-lighting-security-campaign/3969.php

शैक्षिक स्त्री विमर्श
तब और अब

निर्मला सिंह*

वर्तमान परिदृश्य में स्त्री विमर्श पर अनेक चर्चाएँ चल रही हैं, किंतु स्त्री की शिक्षा-दीक्षा अध्ययन भी होना चाहिए। इसी संदर्भ में प्रमाणिक तथ्यों, साक्ष्यों और संदर्भों को आधार बनाते हुए शैक्षिक स्त्री विमर्श पर यह लेख लिखा गया है। समाज में महिला कभी बेटी के रूप में, कभी बहन के रूप में, कभी नारी के रूप में, कभी प्रेयसी के रूप में और कभी माँ के रूप में साहित्य में वर्णित है। इस लेख में महिला-पुरुष साक्षरता दर, लिंगानुपात, बालिका के पोषण की चुनौतियाँ, शिक्षा की स्थिति, महिला शिक्षा के संबंध में चुनौतियाँ तथा महिलाओं के विधिक अधिकारों की स्थिति एवं तत्पश्चात् महिला शिक्षा को सामाजिक धरातल पर प्रतिबिंबित किया गया है।

"नास्ति विद्यासम चक्षुर्नास्ति मातृ समोगुरु"

अर्थात् इस दुनिया में विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है और माता के समान गुरु नहीं है। परिवार में बच्चे के जन्म के उपरांत सबसे पहली गुरु उसकी माँ ही होती है। वह अपने स्नेहपूर्ण स्पर्श, ममतामयी आँचल की छाँव में उसके व्यक्तित्व को निखारती है। सभी बच्चों के लिए उसका प्रारंभिक शैशवकाल जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। बच्चे का सर्वाधिक मानसिक विकास प्रारंभ के वर्षों में होता है। ऐसे समय में बच्चे को शिक्षित और सबल माँ की स्नेहपूर्ण ममता व देखभाल मिलने पर पूर्ण विकसित व्यक्तित्व के रूप में जीवनपर्यंत एक सफल जीवन व्यतीत करता है और समाज को सकारात्मक योगदान दे सकता है।

माँ की महिमा का बखान हमारे वेद, पुराण, दर्शनशास्त्र, स्मृतियों, महाकाव्य, उपनिषदों आदि में दिया गया है। दरअसल 'माँ' के प्रति पैदा होने वाली अनुभूतियों को शब्दों में बयाँ करना मुश्किल है अर्थात् हमारे समाज के निर्माण में माँ के रूप में महिला की ज़िम्मेदारी अति महत्वपूर्ण है। मैथिली शरण गुप्त की पंक्तियाँ माँ के ममतामयी व्यक्तित्व का मूर्तिमंत दर्शन कराती हैं —

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

हमारे देश को आज़ाद हुए 70 दशक हो गए हैं, परंतु महिलाओं के प्रति नज़रिया पूरी तरह नहीं बदला। अभी भी उन्हें पुरुषों से कमतर समझा जाता है और वह विकास हेतु समान अधिकार और अवसरों

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर* (होम साइंस), ज्वालादेवी विद्या मंदिर, पी.जी. कॉलेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश) 208012

Chapter 9.indd 86 11/8/2018 12:10:30 PM

के लिए संघर्षरत हैं। हालाँकि, समाज में महिलाओं की यह स्थिति सदैव से ऐसी नहीं थी। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री को प्रभावी रूप से उसके व्यापक परिवार का समर्थन प्राप्त रहता था। पारिवारिक संपत्ति मातृक्रम में आगे बढ़ती थी। धीरे-धीरे सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के कारण महिलाएँ सीमित होती गईं। एक ऐसा भी ज़माना था जब महिलाओं को पढ़ना-लिखना ज़रूरी नहीं समझा जाता था, परंतु सभी युगों में महिलाओं ने अपनी वीरता विद्वता का लोहा मनवाया। उन्होंने रणभूमि का क्षेत्र हो या लेखन का क्षेत्र, जहाँ और भी अवसर मिला, उन्होंने साबित कर दिया कि वह पुरुषों से कम नहीं हैं।

आज़ादी के बाद भारत के समस्त नागरिकों को समान अधिकार दिलाने एवं समतामूलक समाज की स्थापना के लिए भारतीय संविधान लागू किया गया। संविधान के अनुच्छेद 14 में महिलाओं को समान अधिकार, अनुच्छेद 15 (1) में भेदभाव नहीं करने का अधिकार, अनुच्छेद 16 में अवसर की समानता, अनुच्छेद 39 (घ) समान काम के लिए समान वेतन, अनुच्छेद 51 (ए) (ई) महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने और साथ ही काम की उचित एवं मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है।

संविधान तो महिलाओं को बराबरी का अधिकार देता है, लेकिन महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी व पिछड़ी मानसिकता के कारण बहुत बड़ी संख्या में महिलाओं को अशिक्षा, शोषण, हिंसा, कुपोषण व लिंग भेद का शिकार होना पड़ता है। यही कारण है कि आज़ादी के बाद भी महिलाओं की साक्षरता दर में जितनी वृद्धि होनी चाहिए थी, उस गति से नहीं हुई।

सारणी 1 — भारत में 1951 – 2011 तक महिला-पुरुष साक्षरता दर

वर्ष	महिला	पुरुष	योग
1951	8.86	27.16	18.33
1961	15.36	40.40	28.30
1971	21.97	45.96	34.45
1981	29.76	56.38	43.57
1991	39.29	64.13	52.21
2001	63.67	75.26	68.83
2011	65.46	82.14	74.04

सारणी 1 में दिए गए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो रहा है कि महिलाओं की साक्षरता दर में सुधार हुआ है फिर भी महिलाओं और बालिकाओं के प्रति सदियों पुरानी परंपराओं और रीति-रिवाजों का प्रचलन देश के अधिकांश भागों में अभी तक मौजूद है। यदि महिलाओं की स्थिति में और सुधार हुआ होता तो हमारा देश और अधिक प्रगति पर होता। इस संबंध में गाँधीजी का यह कथन बहुत ही प्रासांगिक है। वह कहते थे कि, 'विकास की धारा से यदि महिलाओं को नहीं जोड़ा गया तो विकास की परिकल्पना कभी साकार नहीं होगी।' यह एक बड़ी विडंबना है कि विकास की धारा से जोड़ना तो दूर की बात है, बालिका को उत्तरजीविता का अधिकार भी देश के कई हिस्सों में नहीं है। समाज के अधिकांश भागों में लिंग की जाँच कर, कन्या भ्रूण की हत्या कर दी जाती है, इससे महिलाओं और बालिकाओं की स्थिति में गिरावट के संकेत मिलते हैं। जनगणना 2011 में 0 – 6 आयु-वर्ग में लिंग अनुपात में बड़े

स्तर पर गिरावट आई है जिसमें 1000 बालकों की तुलना में 918 बालिकाओं का आँकड़ा दर्ज हुआ है, जो गंभीर चिंता की बात है। फिर भी 36 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से 13 राज्यों में (सी.एस.आर.) बाल लिंग अनुपात का स्तर 2011 के राष्ट्रीय औसत (1000 बालकों की तुलना में 918 बालिकाएँ) से कम है। अरुणाचल प्रदेश में अधिकतम 927 और हरियाणा में न्यूनतम 834 है। जम्मू और कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, चंडीगढ़, राजस्थान, उत्तराखंड, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रत्येक 1000 बालकों की तुलना में 900 से कम बालिकाओं की संख्या दर्ज की गई है।

वर्तमान चुनौतियाँ

महिलाओं एवं बालिकाओं के साथ हो रहे लिंग भेद के फलस्वरूप कुछ ऐसी महत्वपूर्ण चुनौतियों को चिह्नित किया गया है, जिन्हें समझना होगा, उसके प्रति जागरूक और संवेदनशील होना होगा और इन परिस्थितियों को बदलना होगा। हमें यह समझना होगा कि भारत में असमान लिंग अनुपात के क्या कारण हैं? दरअसल जन्म के समय लिंग अनुपात का अर्थ एक दी गई समयावधि में जन्म के समय बालक और बालिका का अनुपात है। भारत में बालिका जन्म अनुपात इसलिए कम है, क्योंकि उनको बोझ समझा जाता है और जन्म से पूर्व ही उनकी हत्या कर दी जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी निम्नवत हैं—

1. समाज में पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता है और बालिकाओं को सुरक्षित रखना एक बड़ी ज़िम्मेदारी के रूप में देखा जाता है।
2. दहेज़ आदि के कारण बालिका को कम महत्व दिया जाता है।
3. जेंडर आधारित पक्षपातपूर्ण लिंग चयन।
4. बालिकाओं की ठीक से देखभाल न होने के कारण कम आयु में मृत्यु दर अधिक होना।
5. बालिका शिशु-हत्या, वंश चलाना, वृद्धावस्था में सुरक्षा।

यही कारण है कि हमारे समाज में पिछले पाँच दशकों में बाल लिंग अनुपात में लगातार गिरावट दर्ज हुई है।

सारणी 2 — वर्षानुसार लिंगानुपात

वर्ष	प्रति 1000 बालकों पर बालिकाएँ
1961	976
1971	964
1981	962
1991	945
2001	927
2011	918

यह तो स्पष्ट ही है कि समाज में महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति दयनीय है। भारत में शिशु-मृत्यु दर भी अत्यधिक है। सारणी 3 से भारत में बालक के स्वास्थ्य की स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

सारणी 3 — बाल मृत्यु दर की स्थिति (आँकड़े प्रतिशत में)

क्रमांक	सूचक	कुल	ग्रामीण	शहरी
1.	शिशु-मृत्यु दर	40	44	27
2.	5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु	49	55	29
3.	बाल मृत्यु दर	11	12.3	6.4
4.	नवजात पश्चात् मृत्यु दर	12	13	12
5.	पैदाइशी कम वज़न	22		
6.	नवजात मृत्यु दर	28	31	15

वर्तमान में हमारा समाज पोषण और सामाजिक-आर्थिक संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। अल्प पोषण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारण मानव स्वास्थ्य पर गहरा असर हो रहा है, जिसकी सर्वाधिक शिकार महिलाएँ और बच्चे हैं। कुपोषण से न सिर्फ़ शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावित होती है, बल्कि बाल कुपोषण से आर्थिक उत्पादकता पर सीधा असर होता है। किशोरी बालिकाओं और महिलाओं के पोषण की स्थिति महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि उन्हें बच्चे को जन्म देना होता है। हमारे देश में महिलाओं और किशोरियों के कुपोषण की स्थिति चिंताजनक है।

शिक्षा की स्थिति

शिक्षा के बिना विकास की बात करना किसी भी समाज के लिए बेईमानी है। ऊपर से लड़कियों को शिक्षा की सुविधाओं का अभाव है। जो लड़कियाँ स्कूल जाती भी हैं, उनमें से कक्षा 1 से 10 तक पहुँचते-पहुँचते अधिकतम लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती हैं। बालिकाओं के स्कूल छोड़ने के कई कारण चिह्नित किए गए हैं, जैसे —

- पढ़ाई में रुचि न लेना;
- घर के काम की ज़िम्मेदारी;
- छोटे बहन-भाई की देखभाल;
- लिंग भेद;
- गरीबी;
- प्रवास करना;
- स्कूल दूर होना;
- स्कूल में असुरक्षा की भावना;
- कम उम्र में विवाह;
- सांस्कृतिक और धार्मिक कारण।

यह तो स्पष्ट है कि यदि महिलाओं के प्रति हो रहे लिंगभेद का उन्मूलन कर, उन्हें शिक्षित और स्वस्थ बनाने के लिए कारगर उपाय अपनाए जाएँ तो हम एक स्वस्थ समाज बनाने की तरफ़ अग्रसर हो सकते हैं। सरकार इन क्षेत्रों में लगातार प्रयासरत भी है। सरकार द्वारा महिलाओं एवं बालिकाओं के उत्थान के लिए सराहनीय कदम भी उठाए जा रहे हैं। उनके पक्ष में कानून और योजनाएँ बन रही हैं, जिसके अनुपालन पर सरकार की पैनी नज़र रहती है। मुख्य रूप से महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण के लिए निम्नवत योजनाएँ संचालित हैं —

1. **लिंग चयन का प्रतिषेध अधिनियम —1994**
(गर्भधारण-पूर्व और प्रसव-पूर्व निदान तकनीक) वर्ष 2003 में यथा संशोधित

सारणी 4 — पोषण की चुनौतियों संबंधी कुछ तथ्य

महिलाएँ	किशोरियाँ
एनीमिया (15 – 49 वर्ष) 56.2 प्रतिशत	एनीमिया 56 प्रतिशत
18.5 से कम बी.एम.आई. (चिरकालिक ऊर्जा की कमी) 36 प्रतिशत	18.5 से कम बी.एम.आई. 47 प्रतिशत
महिलाओं की आयु के साथ कुपोषण में गिरावट और अधिक पोषण में वृद्धि होती है।	18 वर्ष से कम उम्र में 58 प्रतिशत महिलाओं का विवाह हो गया और 30 प्रतिशत ने प्रथम बच्चे को जन्म दिया।

- यह कानून गर्भाधान से पहले और बाद में, दोनों समय पर लिंग चयन पर प्रतिबंध लगाता है।
- इस कानून का उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है।

2. बाल विवाह निषेध अधिनियम — 2006

इसमें 21 साल से कम उम्र के लड़कों व 18 साल से कम उम्र की लड़कियों को नाबालिक माना गया है और इस प्रकार के लड़कों एवं लड़कियों के विवाह को रद्द किया जा सकता है।

3. दहेज प्रतिषेध अधिनियम — 1961 (संशोधित अधिनियम — 1986)

यह अधिनियम दहेज लेने व देने पर प्रतिबंध लगाता है। दहेज देने या लेने के लिए दंड का प्रावधान है, जिसमें कम-से-कम पाँच साल का कारावास के साथ कम-से-कम ₹ 15000.00 का जुर्माना होगा। धारा 498 (ए) के अनुसार यदि महिला को दहेज के लिए उसके पति या पति के रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता का सामना करना पड़ता है तो उन्हें तीन वर्ष तक कारावास और इसके साथ जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

4. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम — 2005

घरेलू हिंसा अधिनियम — 2005 में बनाया गया और 26 अक्तूबर, 2006 से इसे लागू किया गया। इस अधिनियम द्वारा महिलाओं के साथ घर के अंदर होने वाली हिंसा, शोषण व उत्पीड़न को रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं

1. बालिकाओं के अस्तित्व, संरक्षण और शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 22 जनवरी, 2015 को पानीपत, हरियाणा में 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम की शुरुआत की गई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य लड़कियों के गिरते लिंगानुपात के मुद्दे के प्रति लोगों को जागरूक करना है। साथ ही लड़का और लड़की में होने वाले भेदभाव को रोकने एवं उनकी शिक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है।
2. किशोरियों के सशक्तिकरण के लिए राजीव गाँधी सबला योजना की शुरुआत 1 अप्रैल, 2011 को की गई। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 11–18 आयु वर्ग की किशोरियों की देखभाल की जाती है।
3. माताओं की बेहतर देखभाल के लिए इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना संचालित है।
4. वर्ष 2004 से प्रदेश/देश की शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े विकास खंडों में कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालय संचालित है, जिसमें पिछड़े व कमज़ोर वर्ग की बालिकाओं को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है।
5. प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के अंतर्गत महिलाओं को मुफ़्त एल.पी.जी. गैस कनैक्शन मिलने का प्रावधान है।

महिलाओं और बालिकाओं के लिए बहुत सारी कल्याणकारी योजनाएँ और कानून हैं, लेकिन इस समस्या को भेदना इतना आसान नहीं है। आजकल

नियमित समाचार-पत्रों और टेलीविजन चैनल पर महिलाओं के विरुद्ध हो रही हिंसा, शोषण, अपराध, बलात्कार की सूचनाएँ दिल को अंदर से हिला देती हैं। कहीं कूड़े के ढेर पर मासूम मिलती है तो कहीं चलती ट्रेन से पिता अपनी ही बेटियों को फेंक देता है। यह तो बड़े-बड़े अपराध हैं जो मीडिया के माध्यम से सामने आ जाते हैं, लेकिन ऐसी वंचना और यातना जो महिला या लड़की अपने घर में, गली में, सड़क पर, बाहर, ससुराल में नित्यप्रति झेलती है, उसका तो कोई हिसाब ही नहीं है। इस प्रकार की दूषित मानसिकता का उपचार सिर्फ़ योजना बनाने या कानून बनाने से नहीं होगा। हर स्तर पर आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। लोगों के दिमाग को जागरूक करना होगा। मानसिकता और नज़रिया बदलना होगा।

जब हम बार-बार कहते हैं कि गाड़ी तभी चलेगी जब दोनों पहिए बराबर और मज़बूत होंगे फिर हमें इसी अवधारणा पर कायम रहते हुए आगे के लिए प्रयास भी करना चाहिए। बदलाव की बातचीत में महिला, पुरुष, नौजवान सभी को सम्मिलित करना चाहिए, लेकिन अफ़सोस की बात है कि इस तरह के मुद्दों पर सभाएँ और चर्चाएँ जन-सामान्य स्तर पर प्रचलन में नहीं हैं। पंचायतों की बैठक के एजेंडा में लिंग-भेद और बालिका सशक्तिकरण नहीं है और न ही किसी राजनीतिक बैठक में। हाँ, कभी कोई बड़ी निर्मम घटना घट जाए तो कुछ पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी वर्ग और महिला संगठन कुछ दिन सड़क पर उतर कर आक्रोश प्रदर्शित करते हैं, लेकिन फिर उत्साह ठंडा... फिर कुछ लड़कियाँ कूड़े के ढेर में मिलती हैं और फिर समाचार-पत्र की हेडलाइन बनती हैं। आखिर ऐसा क्यों है? किस स्तर पर प्रयास और तेज़ करने चाहिए, यह चिंतन का बिंदु है।

शिक्षा की गुणवत्ता के साथ ही नैतिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। प्रारंभिक स्तर पर यदि बच्चे के मानसिक विकास पर ध्यान दिया जाए और उसे संवेदनशील बनाने के लिए प्रयास किया जाए, साथ ही हिंसा से क्या नुकसान होता है, इस संबंध में जागरूक किया जाए तो वह बच्चा आगे चलकर एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ न्याय में विश्वास रखने वाला व्यक्ति बन सकता है। बचपन में बच्चे के साथ होने वाला व्यवहार आजीवन उसके साथ रहता है। यदि किसी बच्चे के साथ बचपन में क्रूरता का व्यवहार किया जाए तो उसका व्यवहार भी दूसरों के प्रति उसी प्रकार का होगा। परिवार, समाज और विद्यालय तीनों यदि बचपन से ही बच्चे के पालन-पोषण, उसके विकास एवं शिक्षा व उचित व्यवहार पर ध्यान दें तो शायद एक सुंदर समाज बनाने के लिए एक बड़ी पहल होगी। बचपन से ही लड़का-लड़की में भेद न करके उन्हें बराबर का मौके दें। दोनों के कामों में भेद न करके दोनों को घर और बाहर के सभी कार्य करने की आदत डालें, उन्हें उनके अधिकार के साथ ही कर्त्तव्यों का बोध कराएँ, उनके अंदर जीवन कौशल शिक्षा विकसित करें, उनको सपने देखने के लिए आज़ाद करें तभी तो वह स्वछंद विचारों के समुद्र में गोते लगाएँगे। लेकिन ऐसा तब होगा, जब हम सोच के दायरे को विस्तार देंगे। जब हम लड़का-लड़की और महिला-पुरुष की भूमिका को नये नज़रिए से देखेंगे। जब महिलाओं से मात्र खाना बनाने, चारा, लकड़ी व ईंधन एकत्रित करने वाली,

पानी लाने वाली, अपने पति व बच्चों की देखभाल की अपेक्षा करने के बजाय पुरुषों के साथ बराबर कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली महिला के रूप में देखेंगे। साथ ही इन मामलों में पुरुषों से भी बहुत-सी अपेक्षाएँ रहेंगी। यदि वह होटल में खाना बना सकते हैं तो घर के किचन में हाथ बटाने में शर्मिंदगी क्यों समझते हैं? उन्हें भी घर के सभी कामों में हाथ बटाना चाहिए और यह आदत बचपन से ही लड़कों में डालनी चाहिए।

- विद्यालय में दी जा रही शिक्षा के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए बच्चों में समतामूलक, अहिंसावादी विचारधारा के बीज रोपित किए जाएँ। इसके लिए सप्ताह में एक दिन चर्चा, परिचर्चा, नाटक, प्रोजेक्ट आदि कार्य किए जाएँ ताकि बच्चों की समझ विकसित हो सके व शिक्षा को वे अपने जीवन से जोड़कर देख सकें।
- समुदाय स्तर पर काउंसलर की व्यवस्था हो जो समस्याग्रस्त बच्चों की लगातार काउंसिलिंग करते हुए उनका प्रारंभिक अवस्था में ही उपचार कर सके।
- पंचायत अपने क्षेत्र में बच्चों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ले और अराजक व्यक्तियों को चिह्नित कर ज़रूरी कार्यवाही करें।
- गाँव स्तर पर महिलाओं के सशक्त समूह बनाए जाएँ जो लड़के-लड़कियों में भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठाएँ।
- ऐसे नौजवान युवक-युवतियों को सम्मानित किया जाए जो इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रहे हों।
- पंचायत एवं नगरों में आधारभूत ढाँचे को जेंडर लेंस से देखते हुए ऐसी सुविधाएँ देनी चाहिए जो महिलाओं और बालिकाओं के लिए सुलभ हों।
- स्वास्थ्य सुविधाएँ, शौचालय, परामर्श की व्यवस्था नि:शुल्क और निकट सुलभ होना चाहिए।
- पंचायतों और वार्डों में शिक्षा का हब बनाना चाहिए। जिसमें पुस्तकालय, समाचार-पत्र, चर्चा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, योगासन आदि से संबंधित गतिविधियाँ रोज़मर्रा का हिस्सा हों। इनके संचालन की ज़िम्मेदारी सेवानिवृत्त व्यक्तियों, नौजवानों, महिलाओं को दिया जा सकता है। इस हब में महिला-पुरुष बच्चे सभी इकट्ठा हों, आपस में बैठें, बातचीत करें और एक-दूसरे की ज़रूरत को समझें और सहयोग का वातावरण बने।
- इसी प्रकार बच्चों को सशक्त और आत्मरक्षा के लिए दक्ष बनाने के लिए नि:शुल्क प्रशिक्षण की सुविधा होनी चाहिए।
- किशोर-किशोरियों को जीवन कौशल प्रशिक्षण व परामर्श मिलना चाहिए। जिससे वह अपने लिए बेहतर विकल्प चुन सकें। माता-पिता, समुदाय और शिक्षण संस्थान सभी मिलकर किशोर-किशोरियों की बेहतरी के प्रयास करें और यह देखें कि बच्चे गलत राह पर तो नहीं भटक रहे हैं।
- बालिकाओं और महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उनके लिए अधिक-से-अधिक रोज़गार उपलब्ध कराने होंगे ताकि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।

- खेल-कूद को प्रोत्साहित करने के लिए सभी पंचायतों व वार्डों में खेल-कूद मैदान हों, खेल-कूद का सामान हो और बालिकाओं की इसमें बढ़-चढ़ कर भागीदारी हो। आदर्श स्थिति तो वह होगी जब माता-पिता, बालक-बालिका सभी खेलते नज़र आएँ। भेदभाव दूर करने के लिए यह एक खूबसूरत पहल हो सकती है।
- युवाओं को नशे की आदत से दूर करने के लिए अलग से प्रयास करने चाहिए। घर से दूर जाकर पढ़ने-लिखने वाले बच्चों में इस आदत का खतरा अधिक होता है। माता-पिता इतना ध्यान दें कि जब भी बच्चा बाहर से लौटकर आए उसकी काउंसिलिंग कराएँ, उससे दोस्ताना व्यवहार रखें और उसे यह एहसास न हो कि माता-पिता उस पर शक करते हैं।
- पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ानी होगी और उनके स्वतंत्र चिंतन को प्रोत्साहित करना होगा। उन्हें यह विश्वास दिलाना होगा कि उसे अपने बारे में सोचने और इसके लिए निर्णय लेने का अधिकार है।
- ऐसे सुंदर और खुशहाल समाज की कल्पना एक बेहद खूबसूरत सपना है, जहाँ किसी की आँखों में आँसू न हो, कोई ऊँच-नीच का भेदभाव न हो, कोई किसी का हक न छीने, सबको समान अधिकार हो, मासूम की मासूमियत न छिने, कोख में कोई बेटी न मरे, बेटी के जन्मदिन पर खुशियाँ मनाएँ, सड़के, घर, समाज सब बेटियों के लिए सुरक्षित हो, हमारे आस-पास साफ़-सफ़ाई हरियाली और स्वच्छ हवा हो, हम आपस में एक-दूसरे के साथ बैठकर कुछ पल बिता सकें, चारों तरफ़ फूल खिले हों जिसमें भीनी-भीनी खुशबू हो, गौरैया हमारे आँगन में बैठकर गीत गाएँ... चलो इस सपने को रोज़ देखें, खूब देखें, सबको बताएँ, सबको सपने दिखाएँ ताकि एक दिन यह सपना हकीकत बन सके। दुष्यन्त कुमार की यह गज़ल परिवर्तन का जयघोष करती है —

हो गई है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

संदर्भ

पर्यावरण सूचना प्रणाली (एनविस). पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार.
www.wcd.nic.in की website पर उपलब्ध, प्रशिक्षकों हेतु मॉड्यूल (हिन्दी)

गाँधीवादी मूल्यों पर केंद्रित प्राथमिक शिक्षा

पूर्णिमा पाण्डेय*
दीपा मेहता**

आजकल हमारे समाज में जिस तरह की अमानवीय घटनाएँ घटित हो रही हैं, विद्यालय भी इससे अछूता नहीं रहा है। विद्यालयों में भी बच्चे हिंसा के इस स्तर तक पहुँच जाते हैं, जहाँ आपस में मारपीट करते हैं और साथ ही साथ कभी-कभी जान लेने पर उतर जाते हैं और ले भी लेते हैं। सितंबर, 2017 के एक स्कूल में दूसरी कक्षा के विद्यार्थी की 11वीं कक्षा के विद्यार्थी ने हत्या की। जाँच में यह ज्ञात हुआ कि 11वीं कक्षा के आरोपी विद्यार्थी ने पी.टी.एम. (Parents Teacher Meeting) तथा परीक्षा को निरस्त करवाने के लिए बालक की हत्या की। यह घटना न केवल समाज में व्याप्त हिंसा को दर्शा रही है, अपितु यह विद्यार्थियों में शिक्षक-अभिभावक के व्यवहार, विद्यालय के असुरक्षित वातावरण, परीक्षा एवं पी.टी.एम. के प्रति बच्चों में उत्पन्न भय तथा अशांति को प्रदर्शित कर रही है। ऐसी घटनाओं के लिए मात्र अपराधी या गुनाहगार को सज़ा देना ही आवश्यक नहीं है, बल्कि हमारा समाज, शिक्षक गण, अभिभावक गण, विद्यालय, विद्यालयी प्रबंधन, विद्यालयी पाठ्यक्रम, शैक्षिक नीतियाँ आदि की जवाबदेही बनती है तथा ये सभी ज़िम्मेदार हो सकते हैं। जिसके लिए हमें पुनः अपने महान विचारकों, दर्शनशास्त्रियों, जैसे — महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद, रविंद्र नाथ टैगोर, अरविंदो, सी. वी. रमन, डॉक्टर ए.पी. जे. अब्दुल कलाम आदि की ओर मुड़कर देखना होगा। हमें अपने विद्यालयों की आत्मा में मानवीय गुणों का समावेशन करना होगा, जिससे हम अपने समाज में एक ऐसी विद्यालय व्यवस्था का निर्माण कर सकें, जहाँ के बच्चों का चारित्रिक, मानसिक, शारीरिक, सांवेगिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास मानवीय मूल्यों के आधार पर हो सके।

हमारी प्राचीन भारतीय व्यवस्था में विद्यालय की जो संकल्पना थी, जिसमें शिक्षा में मानवीय मूल्यों का समागम होता था, आज की विद्यालयी व्यवस्था में हमें नदारद दिखता है। हमें पुनः यह चुनौती पेश करता है कि हमें अपने प्राचीन विद्यालयी व्यवस्था की ओर देखना चाहिए, जिससे कि हमारे विद्यार्थियों का केवल अकादमिक विकास ही नहीं; मानवीय मूल्यों पर आधारित चारित्रिक विकास भी हो। जिसके लिए यह आवश्यक है कि मौजूदा समाज में विद्यालयी व्यवस्था को गाँधीवादी विचारधारा

* यू.जी.सी, *सीनियर रिसर्च फ़ेलो*, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी 221010
** *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी 221010

एवं उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों से परिपक्व किया जाए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के आचरण एवं व्यवहार में ऐसे कई गुण विद्यमान थे, जिसके कारण वे पूरे विश्व में बच्चों, युवाओं एवं वयस्कों के लिए प्रेरणा का प्रकाश पुंज बनकर आलोकित हुए। गाँधीजी ने स्व-जीवन में जिन 'ग्यारह व्रतों' को संकल्पित किया तथा आजीवन उनका अनुपालन किया, उन 'ग्यारह व्रतों' का अनुकरण एवं अनुपालन ज़मीनी स्तर पर करना तथा उनका समावेशन शिक्षा, शिक्षण एवं अधिगम में करने की आवश्यकता है। ये 'ग्यारह व्रत' हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जना, सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी, अस्पृश्यता।

1. सत्य

सत्य महात्मा गाँधी द्वारा बताए गए ग्यारह व्रतों में सबसे महत्वपूर्ण व्रत है। सत्य सभी मूल्यों की आधारशिला है। बचपन में ही राजा हरिश्चंद्र के नाटक से प्रभावित होकर, गाँधीजी ने सत्य का अनुपालन करने का संकल्प ले लिया था। गाँधीजी के अनुसार, "सत्य को प्राप्त करना ही सच्ची भक्ति और वास्तविक समर्पण है। सत्य एक ऐसा मार्ग है, जो ईश्वर की ओर ले जाता है।" गाँधीजी ने सत्य को ईश्वर के साथ समरूप किया। उनके लिए सच्चाई वास्तव में ईश्वर थी और सत्य उनका धर्म था। गाँधीजी के अनुसार, सत्य के अलावा मानव जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं। अतः सत्य का पालन प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक कार्य में होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को मन से, वचन से तथा कर्म में सत्य का पालन करना चाहिए। क्योंकि सत्य के बिना वास्तविक शांति एवं प्रसन्नता मिलना असंभव है।

2. अहिंसा

'ग्यारह व्रतों' में सत्य के बाद अहिंसा का विशिष्ट स्थान है। किसी प्राणी को शारीरिक, सांवेगिक और वाचिक रूप से किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाना ही अहिंसा है। महात्मा गाँधी के अनुसार, अहिंसा और सत्य परस्पर एक-दूसरे से संबंधित हैं, इन्हें अलग करना असंभव है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि बुराई एवं अन्याय को चुपचाप सहते रहना अहिंसा कदापि नहीं है। अहिंसा अकर्मण्यता और कायरता का संकेत नहीं है, अपितु यह वीरता, सहनशीलता, गंभीरता, महानता का एक गुण है। अहिंसा श्रेष्ठता, प्यार, करुणा, दया और सहिष्णुता का प्रतीक है। अहिंसा के द्वारा विश्व में मौजूद अधिकतर समस्याओं का समाधान शांतिपूर्वक निकाला जा सकता है।

3. अस्तेय

अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी नहीं करना। यद्यपि गाँधीजी ने अस्तेय का व्यापक अर्थ बताया। उनके अनुसार, अस्तेय का अर्थ मात्र चोरी करना नहीं, बल्कि अनावश्यक चीज़ों को एकत्रित नहीं करना और दूसरों की वस्तुओं, सफलता, संपन्नता आदि को देखकर लालच नहीं करना है। अस्तेय गुण की कमी के कारण ही विश्व में गरीबी एवं दीनता व्याप्त

है। जो अमीर एवं संपन्न हैं, वे प्राकृतिक एवं भौतिक संसाधनों का उपयोग करने के साथ ही बेहिसाब दुरुपयोग भी करते हैं। वहीं दूसरी ओर गरीब व्यक्ति भोजन, पानी, मकान तथा अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है जो व्यक्ति अस्तेय को अपने जीवन में आत्मसात् करता है, वह समाज में अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ दूसरों की सहायता करते हुए सरल एवं सहज जीवन को अपनाता है। इस प्रकार, अस्तेय का अर्थ केवल चोरी करना नहीं है।

4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य पवित्र रहने का गुण है। ब्रह्मचर्य से तात्पर्य है मन, वचन और कार्य में शुद्धता का विद्यमान होना। यह यौन गतिविधियों में भोग को नियंत्रित करने के लिए इंद्रियों पर नियंत्रण के अभ्यास से संबंधित है। महात्मा गाँधी के अनुसार, मात्र यौन गतिविधियों का परिहार करना ही ब्रह्मचर्य नहीं माना जा सकता। एक वास्तविक ब्रह्मचारी वह है, जिसके मस्तिष्क से पुरुष और स्त्री के मध्य अंतर लगभग गायब हो जाता है तथा जिसने समुचित रूप में अपनी सभी इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया हो।

5. अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए लोभवश कोई भी वस्तु एकत्रित अथवा संचित न करना। महात्मा गाँधी के अनुसार, अपरिग्रह और अस्तेय परस्पर संबंधित हैं। अपरिग्रह एक तरह से सांसारिक एवं भौतिक संपत्ति के संचयन का निषेध करता है। अपरिग्रह लोभ की भावना से विरक्ति को दर्शाता है, जिसमें अधिकारात्मकता से मुक्ति पाई जाती है। यह प्रत्येक व्यक्ति की अति इच्छाओं और संपत्ति को सीमित करने के सिद्धांत पर आधारित है। यदि हम अपने पास उन अनावश्यक वस्तुओं को एकत्र करके रखते हैं, जिनका हमारे जीवन में कोई उपयोग न हो; तो यह हीनता का लक्षण है। सांसारिक एवं भौतिक वस्तुओं के संचय को लालच, ईर्ष्या, स्वार्थ और बढ़ती वासना के एक संभावित स्रोत के रूप में माना जाता है, दिखावे या अहंकार के लिए धन व संपदाओं का संचयन मानव जीवन की उत्कृष्टता एवं मूल्यता में गिरावट का प्रतीक है। जीवित रहने के लिए पर्याप्त एवं मूलभूत आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करना ही संपूर्ण मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है।

6. शरीर श्रम

गाँधीजी ने टॉलस्टॉय तथा रस्किन के कार्य से 'शरीर श्रम' का विचार लिया। गाँधीजी के अनुसार, 'शरीर श्रम' का अर्थ है कि हर किसी को अपने शरीर के लिए पर्याप्त श्रम करना चाहिए ताकि वह अपना जीवन जीने के लिए पात्र हो। 'शरीर श्रम' से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता एवं क्षमतानुसार कुछ उपयोगी शारीरिक श्रम अथवा कार्य अवश्य करना चाहिए। शरीर श्रम दर्शाता है कि हमें अपना कार्य ठीक ढंग से और सही तरीके से करना चाहिए ताकि समाज

और देश के विकास में हमारा कार्य उपयोगी हो। सभी को आर्थिक रूप से मज़बूत और आत्मनिर्भर बनना चाहिए, ताकि हम अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा कर सकें, साथ ही, हमें हर प्रकार के कार्य का सम्मान करना चाहिए। क्योंकि, हर कार्य महत्वपूर्ण है तथा प्रत्येक कार्य का समाज में समान मूल्य है।

7. अस्वाद

अस्वाद से तात्पर्य है स्वाद तथा भोजन पर नियंत्रण। अस्वाद, ब्रह्मचर्य के पालन के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। गाँधीजी के अनुसार, व्यक्ति की अगर स्वाद पर विजय प्राप्त हो जाती है तो ब्रह्मचर्य का पालन आसान हो जाता है। महात्मा गाँधी के अनुसार, हमें भोजन को दवा के रूप में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लेना चाहिए, न कि स्वाद के आधार पर। भोजन को शारीरिक ज़रूरत के अनुसार सीमित मात्रा में ही ग्रहण करना लाभदायक होता है। अस्वाद की सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि भोजन मात्र शरीर को बनाए रखने के लिए ही ग्रहण किया जाना चाहिए, जिससे व्यक्ति केवल दूसरों की सेवा कर सके।

8. सर्वत्र भयवर्जना

महात्मा गाँधी के अनुसार, निर्भयता से तात्पर्य है सभी बाह्य भयों से मुक्ति अर्थात् बीमारी के भय से मुक्ति, शारीरिक चोट और मौत के भय से मुक्ति, किसी नज़दीकी और प्रिय के दूर जाने के भय से मुक्ति, प्रतिष्ठा/मान-मर्यादा के धूमिल हो जाने के भय से मुक्ति आदि। गाँधीजी बचपन में स्वयं एक डरपोक बच्चे थे; बाद में उन्होंने खुद को भय से मुक्त करने के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयास किया। गाँधीजी के अनुसार, निर्भयता का मतलब अहंकार नहीं है, क्योंकि अहंकार भय का संकेत है। निर्भयता अंतर्मन की शांति को दर्शाता है। निर्भयता अन्य गुणों को आधार प्रदान करती है, अतः प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में मानवीय मूल्यों के समावेशन के लिए निर्भयता का होना अनिवार्य है।

9. सर्वधर्म समानत्व

भारत जैसे बहु-धार्मिक देश में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण मूल्य है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म से एक विशेष प्रकार का लगाव होता है, हालाँकि, स्व-धर्म से लगाव का यह आशय कतई नहीं कि हम दूसरे धर्मों का अनादर करें। सभी धर्मों के अपने सिद्धांत, आदर्श और नियम हैं, इसके अलावा, सभी धर्मों में सकारात्मक विचार और मूल्य हैं। इसलिए, किसी को भी अपने धर्म को एकमात्र आदर्श धर्म नहीं मानना चाहिए। महात्मा गाँधी ने बताया कि जिस प्रकार हम अपने आस-पास मौजूद विभिन्नता को स्वीकारते हैं, उसी प्रकार हमें धर्म की विभिन्नता को भी सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। सभी धर्म अलग-अलग हैं, परंतु सभी धर्मों का सार एक है; उद्देश्य भी एक ही है। जैसे हम मानव जीवन के विभिन्न रूपों और दृष्टिकोणों को स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार हमें विभिन्न धर्मों को भी स्वीकार करना

चाहिए और उन्हें सम्मान देना चाहिए। सभी धर्म बराबर हैं। अतः हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सभी लोग विश्व में मौजूद सभी धर्मों को आदर व सम्मान दें तथा अन्य धर्मों में विश्वास रखने वाले लोगों के साथ समान रूप से उचित व्यवहार करें।

10. स्वदेशी

महात्मा गाँधी ने भारतीयों के हित में स्वदेशी आंदोलन शुरू किया। उनके अनुसार, विदेशी वस्तुओं का उपयोग करके हम भारतीय कारीगरों, हस्तशिल्पकारों और श्रमिकों को नुकसान पहुँचा रहे हैं। उन्होंने अपने देश को सशक्त, सुदृढ़ तथा विकसित बनाने के लिए भारतीयों को स्वदेशी सामान खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया। लोगों को केवल स्वदेश में निर्मित वस्तुओं और उपकरणों के उपयोग व उपभोग करने पर बल दिया गया। स्वदेशी एक परिप्रेक्ष्य है, एक दृष्टिकोण है तथा जीवन जीने का एक नज़रिया है। गाँधीजी ने बताया कि स्वदेशी में स्वार्थ की कोई जगह नहीं है; अथवा अगर इसमें स्वार्थ है, तो यह सर्वोच्च प्रकार का है, जिसका संबंध परोपकारिता से है। गाँधीजी का मानना था कि अगर भारतीय लोग स्वदेशी सिद्धांत का पालन करते हैं, तो भारत का प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से आत्मनिर्भर, स्वतंत्र, साहसी और निर्भीक बन जाएगा। साथ ही संपूर्ण भारत देश आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और नैतिक रूप से शक्तिशाली हो जाएगा।

11. अस्पृश्यता

अस्पृश्यता से तात्पर्य वर्ण, जाति, रंग, क्षेत्र, धर्म आदि के आधार पर भेदभाव को समाप्त करना और समानता एवं सद्भावपूर्ण व्यवहार को अपनाना है। महात्मा गाँधी ने सदैव अस्पृश्यता का पूर्णतः विरोध किया तथा अस्पृश्यता को हिंदू समाज का कैंसर कहा। उनका मानना था कि प्राचीन समय से अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग कदापि नहीं था, बल्कि यह एक ऐसी बीमारी है, जो पूरे भारत को सदियों से हानि पहुँचा रही है। गाँधीजी ने भारत में अस्पृश्यता रूपी अभिशाप को समाप्त करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास किए। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रंग के आधार पर अस्पृश्यता का पुरज़ोर विरोध किया। महात्मा गाँधी के अनुसार, यह बड़ी शर्म की बात है कि यदि एक व्यक्ति विशिष्ट वर्ण में पैदा हुआ है, तो हम उस व्यक्ति को अस्पृश्य और निम्न कोटि का मानेंगे। प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। क्योंकि हम सभी लोग उस परम-पिता ईश्वर की संतान हैं। जितना इस पृथ्वी पर हमारा अधिकार है, उतना ही दूसरों का। अतएव, प्रत्येक व्यक्ति को हर स्थान, हर जगह, हर क्षेत्र में जाने का अधिकार है; तथा अपनी क्षमता, ज्ञान, रुचि एवं योग्यतानुसार प्रत्येक कार्य को करने का अधिकार है।

गाँधीवादी मूल्यों पर केंद्रित प्राथमिक विद्यालय की संकल्पना

प्राथमिक विद्यालय की मौजूदा स्थिति चिंतनीय है, जिससे कि गाँधीवादी मूल्यों एवं आदर्शों की ज़रूरत

जान पड़ती है। पाठ्यक्रम संबंधित क्रियाकलापों, कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को पुनर्संरचित एवं निर्मित करने की आवश्यकता है। वांछनीय परिवर्तन के लिए मौजूदा पाठ्यक्रम में विश्लेषण एवं सुधार के साथ-साथ विद्यालयी परिवेश को मूल्य-केंद्रित बनाना होगा। प्राथमिक शिक्षा पूरी शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला है। अतः इस स्तर से ही बच्चों में मूल्यों के प्रति ज्ञान, समझ, कौशल एवं अभिवृत्ति को विकसित करने की आवश्यकता है। विद्यालयी परिवेश इस प्रकार होना चाहिए कि प्रत्येक बच्चे का पूर्ण विकास मानवीय मूल्यों के आधार पर हो। विद्यालय प्रबंधन एवं पाठ्यचर्या का यह दायित्व बनता है कि वह नियमित तौर पर इसका ध्यान रखें एवं समय-समय पर उपयुक्त वांछित अनुभवों से बच्चों को परिचित कराएँ। शिक्षक एवं अभिभावकों को भी अपने-अपने दायित्व की पूर्ति करनी होगी जिससे कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में मानवीय व नैतिक गुणों को सुनिश्चित किया जा सके। इस परिप्रेक्ष्य में विद्यालयी पर्यावरण भी मुख्य भूमिका निभाता है। गाँधीजी ने कुछ विशेष तरीकों एवं आयामों की चर्चा की, जिससे विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास हो सके, जैसे— गाँधीजी ने ग्यारह व्रतों में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, शरीर श्रम, ब्रह्मचर्य, सर्वधर्म समानत्व, सर्वत्र भयवर्जना, स्वदेशी, अस्पृश्यता आदि की चर्चा की है, जिसके आधार पर प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थी, शिक्षक, पाठ्यपुस्तक, पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की संकल्पना की जा सकती है। गाँधीजी के ग्यारह व्रतों द्वारा भारतीय परिवेश में हिंसा, भ्रष्टाचार एवं अन्याय के विपरीत, अपने विद्यार्थियों में मानवीय मूल्य आधारित व्यवहार एवं अभिवृत्तियों का संपूर्ण विकास संभव हैं। गाँधीजी ने इस देश को सभी का देश बताया; चाहे व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति अथवा समुदाय का हो। बच्चे धर्म के आधार पर व्यक्तिगत भेदभाव करना सीखते हैं, इन्हीं परिस्थितियों में गाँधीवादी मूल्यों की ज़रूरत एवं उपादेयता प्राथमिक विद्यालयों में महसूस होती है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों में गाँधीवादी मूल्यों के विकास एवं समावेशन के लिए प्रमुख कार्यक्रम (Programme), गतिविधियाँ (Activities) एवं पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ (Co-curriculur-activities) निम्नवत हैं—

- बच्चों को महात्मा गाँधीजी से संबंधित कहानियाँ, उनके जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का चल-चित्रण दिखाना।
- नारायण पंडित द्वारा रचित *हितोपदेश* की कहानियों के द्वारा बच्चों में मूल्य विकास को बढ़ावा देना।
- बच्चों के द्वारा विष्णु शर्मा द्वारा रचित *पंचतंत्र* की कहानियों का अभिनय द्वारा प्रस्तुतीकरण कराना।
- मनुष्य पात्रों के अलावा पशु-पक्षियों पर आधारित लघु कथाओं को सुनना एवं उनके मानवीय पक्षों एवं शिक्षाप्रद सीख को उजागर करना।
- मूल्य आधारित विद्यालयी क्रियाओं का अभ्यास व प्रोत्साहन करना।
- मानवीय मूल्यों एवं विश्व बंधुत्व पर आधारित प्रार्थना एवं सभाओं का आयोजन करना।

- प्राणायाम, ध्यान तथा विभिन्न योग आसनों का अभ्यास कराना एवं उसके लाभ के बारे में बच्चों को बचपन से ही अवगत कराना।
- बच्चों में परस्पर टिफ़िन, भोजन, पुस्तक, खिलौने आदि वस्तुओं को मिल-बाँटकर उपयोग करने की आदत विकसित करना।
- बच्चों की विभिन्न खेल एवं सभाओं में रुचिपूर्ण सहभागिता द्वारा भाईचारा, एकता, सद्भाव, प्रेम, अहिंसा आदि मूल्यों को संपोषित, पल्लवित एवं पुष्पित करना।
- आज के विज्ञान एवं तकनीकी विकास के दौर में ऐसे मानवीय मूल्य आधारित मोबाइल, वीडियो गेम्स का निमार्ण करना, जो बच्चों में शांति, सौहार्द, प्रेम, भाईचारा, करुणा, दया, क्षमा जैसे मूल्यों को बढ़ाएँ।
- विद्यालय में समय पर पाठ्य-सहगामी क्रियाओं (Co-curriculur-activities) एवं सह-शैक्षिक गतिविधियों (Co-scholastic-activities) का आयोजन करना।
- मूल्य पर क्रियाकलाप तथा ऐसी गतिविधियों का आयोजन करना, जिससे बच्चों में मानवीय मूल्यों का विकास हो सके।
- बच्चो में सामूहिक रूप में विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करना।
- कुछ नवीन शिक्षण विधियों का प्रयोग करना, जैसे — स्व-अधिगम मॉड्यूल (Self-study Module), स्व-अध्ययन सामग्री(Self-study Material)।
- कंप्यूटर आधारित कार्यक्रम (Computer Based Programme) और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी केंद्रित कार्यक्रम (Information and Communication Technology Centered Programme) द्वारा बच्चों में ईमानदारी, बातचीत करने के तौर-तरीके, संप्रेषण कौशल, अनुशासन, क्रमबद्धता का सम्मान, साहस आदि मूल्यों का विकास करना।
- वाद-विवाद, संभाषण, कविता-वाचन, कहानी का अभिनयकरण आदि की गतिविधियों द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास करना।
- प्राथमिक स्तर के बच्चों को प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों एवं महापुरुषों के जन्मस्थल एवं संबंधित कार्यस्थल पर भ्रमण के लिए ले जाना चाहिए। जिससे बच्चे खेल-खेल में क्षेत्र भ्रमण (Field-excursion) द्वारा महापुरुषों की जीवनियों एवं कार्यों द्वारा परिचित हो सकेंगे एवं स्वयं के जीवन में प्रेरणा ले सकें।

निष्कर्ष

विद्यालय शिक्षण मौजूदा समय में संघर्ष के दौर से गुज़र रहा है जिसमें हिंसा, बाल शोषण, यौन शोषण, आत्महत्या, हत्या जैसे सभी मामले घटित हो रहे हैं। क्या यह संकल्पना हमारे भारतीय विद्यालय की हो सकती है? यह ज्वलंत प्रश्न हम सभी शिक्षक एवं शिक्षाविदों के लिए एक चुनौती है। आज हमारे समाज में जिस प्रकार से हिंसात्मक घटनाएँ विद्यालय में घटित हो रही हैं, उससे विद्यालय की गरिमा साख पर है। क्या हमारे विद्यालय इतने सुरक्षित

हैं कि उनमें अपने बच्चों को छह से सात घंटे के लिए सुरक्षित छोड़कर हम उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सर्वांगीण विकास सुनिश्चित कर सकते हैं। अब समय आ गया है कि इस दिशा में सार्थक प्रयास किए जाएँ, जिनसे विद्यालयी व्यवस्था सुरक्षित एवं सौहार्दपूर्ण बन सके। सभी विद्यार्थी सुरक्षित एवं संपूर्ण विकास वाली मानवीय मूल्य पर आधारित शिक्षा-ग्रहण कर सकें, जिसके लिए हमें पुनः अपने महान विचारकों, दर्शनशास्त्रियों, जैसे — महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानंद, रविंद्रनाथ टैगोर, अरविंदो, सी.वी.रमन, डॉक्टर ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आदि की ओर मुड़कर देखना होगा। हमें अपने विद्यालयों की आत्मा में मानवीय गुणों का समावेशन करना होगा, जिससे हम अपने समाज में एक ऐसी विद्यालय व्यवस्था का निर्माण कर सकें, जहाँ के बच्चों का चारित्रिक, मानसिक, शारीरिक, सांवेगिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास मानवीय मूल्यों के आधार पर हो सके। हमने आज विद्यालयों का निर्माण तो कर लिया है। परंतु सिर्फ़ ईंट एवं पत्थरों से, कंप्यूटर व प्रयोगशालाओं से तथा बड़ी-बड़ी इमारतों से, जिनमें मूल्य आधारित बड़े-बड़े पोस्टर तो लगे रहते हैं, परंतु उनको पढ़ना एवं अपने व्यवहार में आत्मसात् करना कठिन ही मालूम होता है। इस परिस्थिति के लिए कौन ज़िम्मेदार है? हम सभी शिक्षक-गण, अभिभावक, स्कूल प्रबंधन, विद्यालयी वातावरण, शैक्षिक नीतियाँ (जैसे — शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009, सर्व शिक्षा अभियान, ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम) आदि। अगर हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक ऐसा विद्यालय एवं शैक्षिक परिवेश देना चाहते हैं, जिसमें हमारे बच्चे सुरक्षित एवं मूल्यवान शिक्षा ग्रहण करें तो हमें पुनःअपनी गुरुकुल प्रणाली एवं उस शिक्षा व्यवस्था को खंगालना होगा जिस शिक्षा व्यवस्था ने विश्व-पटल पर चमकने वाले ऐसे सितारे दिए, जिन्होंने अपने ज्ञान एवं मानवीय मूल्यों से पूरे विश्व को प्रकाशवान किया एवं उचित मार्गदर्शन किया।

संदर्भ

गाँधी, एम. के. 1937. *फ्रॉम यरवदा मंदिर. (आश्रम ओब्सर्वेंसज़)*. ट्रांसलेटड फ्रॉम द गुजराती बाई वी. जी. देसाई. नवजीवन प्रकाशन मंदिर. अहमदाबाद. http://www.mkgandhi.org/ebks/yeravda.pdf.

———. 1947. *मेरे सपनों का भारत*. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद.

द इलेवन वोव्स ऑफ़ महात्मा गाँधी. http://www.gandhimanibhavan.org/activities/essay_elevenvows.htm.

शिक्षा का अधिकार — 2009. http://righttoeducation.in/

सर्व शिक्षा अभियान. http://mhrd.gov.in/sarva-shiksha-abhiyan

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम. https://archive.india.gov.in/sectors/education/index.php?id=14

नयी तालीम के केंद्र — आनंद निकेतन
एक विहंगावलोकन

ऋषभ कुमार मिश्रा*

नयी तालीम भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में गाँधीजी के समाज दर्शन का शिक्षणशास्त्रीय संस्करण है। बुनियादी शिक्षा योजना (1937) से लेकर आज तक इसके स्वरूप, प्रासंगिकता और उपादेयता पर चर्चा होती रहती है। प्रत्येक नीतिगत दस्तावेज़ में किसी-न-किसी रूप में इसका उल्लेख किया जाता है। इसे स्वराज के मार्ग, सत्य और अहिंसक समाज के निर्माण का औज़ार और विकास, शांति व सह-अस्तित्व के उपकरण के रूप में रेखांकित किया गया है। इसी पृष्ठभूमि में यह लेख नयी तालीम पद्धति पर आधारित आनंद निकेतन विद्यालय के अवलोकन और आख्यानों के आधार पर उद्घाटित करता है कि किस प्रकार से यहाँ शिक्षण-अधिगम की संस्कृति एक संपोषणीय पारिस्थितिकी में सशक्त विद्यार्थी और सशक्त शिक्षकों के साथ जीवंत होती है।

नयी तालीम महात्मा गाँधी के व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अनुभवों की शिक्षणशास्त्रीय परिणति है, जो न केवल औपनिवेशिक शिक्षा का विकल्प थी, बल्कि स्वराज और स्वावलंबन वृहद् लक्ष्यों को केंद्र में रखकर एक पूर्ण भारतीय शिक्षण पद्धति का प्रतिपादन भी करती है (कुमार, 1999)। इसके मूल में सत्य और अहिंसक समाज के निर्माण की परिकल्पना है (शिवदत्त, 2012)। इसी कारण मार्जरी साइक्स इसे आधुनिक विश्व को गाँधीजी की देन मानती हैं। वे इसे विकास, शांति व सह-अस्तित्व के उपकरण के रूप में रेखांकित करती हैं (साइक्स, 1993)। इस पद्धति में 'मस्तिष्क को हाथ के काम द्वारा शिक्षा मिलनी चाहिए' की मान्यता के साथ हृदय-हाथ-मस्तिष्क के तालमेल को मज़बूत करने के लिए हस्तशिल्प को केंद्र में रखा गया है। आधुनिक निर्माणवादी सिद्धांतों के सापेक्ष यदि हस्तशिल्प आधारित सीखने की गतिविधियों की व्याख्या करें तो ये 'मौलिक गतिविधियाँ' हैं। ब्रूनर, रोगोफ और लावे जैसे मनोवैज्ञानिक इस तरह की गतिविधियों को सीखने की आदर्श स्थिति मानते हैं। वस्तुत: नयी तालीम में हस्तशिल्प शिक्षा का माध्यम नहीं, बल्कि शिक्षा का मूल है। भारतीय समाज के संदर्भ में हस्तशिल्प को सीखने की

* *सहायक प्रोफ़ेसर*, महात्मा गाँधी अतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442005
(इसी शीर्षक से एक शोध पत्र न्यूपा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में पढ़ा गया था।)

Chapter 7.indd 68 10/4/2018 4:57:18 PM

प्रक्रिया के केंद्र में रखना सामाजिक रूपांतरण की संभावना को चरितार्थ करता है। इसके द्वारा वंचित तबकों के ज्ञान और कुशलताएँ न केवल मुख्यधारा में सीखने की वैध विषय-वस्तु की तरह स्वीकार किए जाते हैं, बल्कि भारत की सामाजिक संरचना में विभेद के तत्वों, विशेषकर जाति व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक विवेक की संभावना को भी लिए हुए हैं (कुमार, 1999)। यह शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा द्वारा स्वावलंबन को एक महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में स्थापित करती है। यही नहीं, श्रम विभाजन और शारीरिक श्रमप्रधान कार्यों को निचली जातियों से जोड़कर देखने के पूर्वाग्रह को तोड़ने के लिए भी श्रम की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। नयी तालीम में मातृभाषा द्वारा शिक्षण करते हुए स्वावलंबन, श्रम की प्रतिष्ठा, सहअस्तित्व, समानता जैसे मूल्यों का केवल उपदेश नहीं दिया जाता, बल्कि उसे अपनाया जाता है। प्राय: नयी तालीम को आधुनिक और प्रगतिशील शिक्षा के विपरीत देखा जाता है। यदि इसका सम्यक निर्वचन किया जाए तो यह परंपरा और आधुनिकता के बीच सार्थक संवाद का मार्ग खोलती है। समुदाय के दैनंदिन ज्ञान और अभ्यास को वैज्ञानिक ज्ञान से जोड़ती है। इसमें न तो समुदाय का ज्ञान और कुशलताएँ सर्वोपरि हैं जो कि आलोचना से परे हैं और न ही विषय ज्ञान के रूप में व्यवस्थित ज्ञान एकमात्र वैध अंतर्वस्तु है। इसमें दुनिया को देखने की दृष्टि के विकास के लिए उन अभ्यासों और प्रक्रियाओं को जानने का साधन बनाया जाता है, जिनके प्रति दैनिक जीवन का बड़ा हिस्सा समर्पित है और जिनसे हमारा विचार, कर्म और व्यवहार निर्धारित होते हैं। 'हाथ से काम' में केवल यांत्रिकता और पुनरावृत्ति नहीं होती, बल्कि इसका सृजनात्मकता और नवाचार से भी गहरा संबंध है। इस सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में यह लेख आनंद निकेतन विद्यालय के अवलोकन आधारित आख्यानों के माध्यम से स्पष्ट करता है कि किस प्रकार से यहाँ शिक्षण-अधिगम की संस्कृति एक संपोषणीय पारिस्थितिकी में सशक्त विद्यार्थी और सशक्त शिक्षकों के साथ जीवंत होती है।

संपोषणीय पारिस्थितिकी वाला विद्यालय (आनंद निकेतन)

इस विद्यालय को 'प्रकृति की गोद' में बसा जैसे अतिरंजित विशेषण देकर विशिष्ट और वैकल्पिक बनाने के बदले कहूँगा कि यह विद्यालय, सेवाग्राम में चारों तरफ़ कंक्रीट के फैलते जंगल के बीच स्थित एक संपोषणीय पारिस्थितिकी वाला विद्यालय है। आज भी सेवाग्राम आश्रम और यह विद्यालय अधिकांशत: मिट्टी की दीवारों और खैपरल पर ही टिका हुआ है। जल की समस्या और गर्मी की अधिकता सेवाग्राम सहित विदर्भ क्षेत्र की समस्या है। बावजूद इसके परिसर में पानी से लबालब कुएँ हैं जो विद्यालय और परिसर में पानी की ज़रूरत को पूरा करते हैं। पीपल और बरगद के विशालकाय वृक्ष हैं जो अपनी छाँव में परिसर को समेटे हुए हैं। बताते चलें कि आनंद निकेतन विद्यालय कोई संरक्षित इमारत नहीं है, एक सामान्य विद्यालय की तरह यहाँ रोज़ बच्चे आते हैं, कक्षाएँ चलती हैं। अनेक गतिविधियाँ होती हैं। विद्यालय का आरंभ शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा कक्षा की सफ़ाई से होता है।

झाड़ू मारना और कचरे का व्यवस्थित तरीके से निस्तारण प्रार्थना से पूर्व शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा किया जाने वाला अभ्यास है। भवन की वार्षिक मरम्मत का कार्य ग्रीष्मावकाश में किया जाता है। भूमि को पक्के फ़र्श में तब्दील करने पर ज़ोर नहीं है। इस परिसर के पेड़ों पर पक्षियों का वास है, यहाँ कक्षा की मुंडेर पर चिड़िया के घोसले हैं, जो कि विद्यालय पर्यावास का हिस्सा हैं। परिसर में ही खेत उपलब्ध हैं। जल के पात्र भरे रखे हैं, न तो इनके आस-पास कीचड़ है और न ही बर्तन पर काई जमी है। ये प्रमाण हैं कि स्वास्थ्य और सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा जाता है। प्राकृतिक जल और वर्षा के जल संचय की व्यवस्था है। यह व्यवस्था किसी बाहरी विशेषज्ञ द्वारा नहीं की गई है, बल्कि विद्यार्थियों और शिक्षकों के अधिगम अनुभव का हिस्सा है। प्रकृति के मानवीकरण का उदाहरण भी देखा जा सकता है। परिसर के केंद्र में स्थित वृक्ष को महादेव देसाई का नाम दिया गया है। जिस तत्परता के साथ विद्यालय के भवन की देख-रेख की जाती है, उसमें मज़दूर नाम की इकाई नहीं है, बल्कि शिक्षक और विद्यार्थियों ने उसे निर्मित किया है। पुराने टायर द्वारा झूले बनाना हो, रस्सियों द्वारा कूद-फाँद के खेल की व्यवस्था करनी हो, कंकरीले मैदान को कूँट-कूँट कर समतल करना हो, यह सब विद्यार्थी और शिक्षकों ने मिलकर किया है। इसी का एक उदाहरण साझा करना चाहता हूँ, एक दिन एक चिड़िया का बच्चा अपने घोसले से निकलकर कक्षा में आ गया, शिक्षक ने उस चिड़िया के बच्चे को अपने कंधे पर बैठाया और इसके बाद बच्चों सहित उसके घोसले की खोज की जाने लगी। छोटे-छोटे समूहों ने अलग-अलग कक्षाओं की मुंडेर पर बने कई घोसले खोजे। इसी तरह पेड़ की टहनियों पर भी घोसले खोजे गए। इस खोज और सूझ-बूझ के बाद बच्चे को उसके घोसले तक पहुँचाया गया। विद्यालय के उपयोग की अधिकतर सामग्री विद्यालय में बनाई जाती है। विद्यार्थियों और शिक्षकों द्वारा लिफ़ाफ़े, रंग, फ़िनायल आदि बनाए जाते हैं। संसाधनों के पुनर्चक्रण की समुचित व्यवस्था है। उदाहरण के लिए, पेसिंल का छिलका बालटी में रखा जाता है ताकि उसका पुन: उपयोग किया जा सके।

विद्यालय की दिनचर्या — स्वावलंबन, समानता और संवेदनशीलता के बीज

विद्यालय की दैनिक गतिविधियों का प्रारंभ विद्यार्थियों और कर्मचारियों के परिसर में प्रवेश के साथ होता है। जब बच्चे विद्यार्थी के रूप में आते हैं तो उनके लिए प्रार्थना की घंटी विद्यालय के प्रारंभ होने का संकेत होती है। आनंद निकेतन विद्यालय में यह देखा गया कि अधिकांश विद्यार्थी प्रार्थना के लिए निर्धारित समय से पूर्व आते हैं, अपने बैग को यथास्थान रखकर वे अपनी-अपनी कक्षा की सफ़ाई करते हैं। इस दौरान वे यह नहीं विचारते कि किसने किया और किसने नहीं किया। जो पहले आता है, वह सफ़ाई करने लगता है। यह कार्य बिना किसी वयस्क की निगरानी के होता है। सुबह कक्षा की सफ़ाई कर रहे विद्यार्थियों के समूह से जब इस बारे में बात की गई तो उनके जवाब इस प्रकार थे — 'जैसे हम अपना घर साफ़ करते हैं, वैसे ही इसे (कक्षा को) साफ़ करते हैं।' इस काम में मज़ा आता है। हम अपनी-अपनी

जगह को न केवल साफ़ रखते हैं, बल्कि कक्षा के बाहर की भी सफ़ाई रखते हैं।'

उपर्युक्त उदाहरणों का यह आशय नहीं है कि ये विद्यार्थी समय से पूर्व विद्यालय की सफ़ाई करने के लिए आते हैं। प्रार्थना से पूर्व विद्यार्थी समूहों को खेलते और पढ़ते हुए भी देखा गया। विद्यालय के शिक्षक भी सफ़ाई के इस कार्य में प्रत्यक्ष सहभागिता करते हैं। उनके लिए कक्षा या स्टाफ़रूम की सफ़ाई दिखावे का कार्य न होकर आत्मानुशासन का हिस्सा है। सफ़ाई के कार्य में विद्यार्थी और शिक्षकों की सीधी सहभागिता महात्मा गाँधी के स्वावलंबन और समानता के मूल्य का आत्मसात्मीकरण है। यह केवल एकमात्र और विशिष्ट उदाहरण नहीं है, बल्कि इस जैसे अन्य उदाहरण कार्यानुभव और रसोई के काम में भी देखने को मिले, जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर कार्यों का निष्पादन करते हैं। आत्मानुशासन के पाठ का अद्भुत उदाहरण बालवाड़ी की कक्षा में देखने को मिला, जहाँ विद्यार्थी स्वत: ही अपनी उपस्थिति के लिए नीली गोटी और अनुपस्थिति के लिए लाल गोटी लगाते हैं। ये कार्य वे बिना किसी दबाव के पूरी ईमानदारी से करते हैं। बालवाड़ी के विद्यार्थियों के बारे में महत्वपूर्ण अवलोकन रहा कि वे जिस समान को जहाँ से उठाते थे, प्रयोग के बाद वहीं रखते थे। यह व्यवस्था भय के कारण नहीं थी, बल्कि शिक्षक और विद्यालय के बड़े बच्चों के अनुकरण का प्रभाव थी।

जेंडर विभेद को समाप्त करना औपचारिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। विद्यालय की गतिविधियों में न केवल जेंडर संवेदनशीलता देखने को मिली, बल्कि जेंडर विभेद को समाप्त करने के उदाहरण भी देखने को मिले। उदाहरण के लिए कार्यानुभव की कक्षाओं में, जैसे — कृषि, रसोई, सिलाई, दस्तकारी आदि में लड़के और लड़कियाँ समान रूप से हिस्सा लेते हैं। हालाँकि, ये विद्यार्थी जेंडर रोल को संज्ञान में लेते हैं, लेकिन व्यक्तिगत व्यवहार में वे दूसरे जेंडर की भूमिका के निर्वहन में संकोच नहीं करते। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण दो कार्यानुभव में देखने को मिला। जिस समय विद्यालय का भ्रमण किया गया, उस समय विद्यार्थी खेत से खोदी गई हल्दी की सफ़ाई कर रहे थे। लड़के और लड़कियों का मिश्रित समूह बैठा था। वे अपनी-अपनी क्यारियों के उत्पादन के बारे में अवलोकनकर्ता को बता रहे थे। लड़कियों ने भी पुरुषोचित माने जाने वाले कार्य, जैसे — निराई, गुड़ाई, खुदाई के उल्लेख को एक कृषक की भूमिका के रूप में बताया, न कि लड़की की भूमिका में। ऐसे ही सिलाई के कार्यानुभव में लड़कों ने यह अभिव्यक्त किया कि दूसरे विद्यालय में पढ़ने वाले लड़के सिलाई जैसे कार्य में दक्ष नहीं हैं, लेकिन इन लड़कों ने अपने बैठने के लिए बैठक-कोश का निर्माण खुद से किया है।

प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता

एक शिक्षक ने अपने साक्षात्कार में बताया कि खेती का कार्य न केवल एक वैज्ञानिक गतिविधि के रूप में पढ़ाया जाता है, बल्कि कक्षा के बच्चों को यह भी सिखाया जाता है कि कृषि कार्य के दौरान वह विशेष रूप से ध्यान रखें कि कहीं उनके पैर तले कोई पौधा न कुचल जाए। कताई की कक्षा में पाया गया कि

कपास की लोई से बीज निकालने के दौरान विद्यार्थी और शिक्षक यह ध्यान रखते हैं कि एक भी तिनका बीज के साथ न निकले। एक शिक्षिका ने बताया कि सातवीं कक्षा में पशुपालन की चर्चा की जा रही थी, उसी सप्ताह यह सूचना मिली कि ताई की गाय बच्चा जनने वाली है। सभी बच्चे उस अध्यापक के साथ गाय और उसके बच्चे को देखने गए। शिक्षिका ने बताया कि बच्चों के बीच यह बहस हुई कि गाय ने लड़के को जन्म दिया था या लड़की को और उसके बच्चे का नाम क्या रखा जाए।

जीवन के लिए जीवन द्वारा शिक्षा

नयी तालीम की एक महत्वपूर्ण मान्यता है कि जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान जीवन से हासिल किया जाए। इस मान्यता को दो हिस्सों में तोड़कर देखते हैं—प्रथम, जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान, जिसे विद्यार्थी उद्योग व दस्तकारी जैसी कुशलताओं के माध्यम से स्वावलंबन, समानता और अहिंसा जैसे शाश्वत मूल्यों के साथ सीखते हैं। वे किसी कृत्रिम परिवेश में उपदेश हासिल न करके, बल्कि जीवन की समीक्षा करते हैं। यह समीक्षा प्रत्यक्ष अनुभव और सहभागिता के द्वारा प्रकृति, समाज और व्यक्ति के संबंध को परखने से आती है। नयी तालीम के सदंर्भ में यह कहना कि प्रत्यक्ष कार्य के ज़रिये ज्ञान देना सरल है—एक अधूरी व्याख्या है। वस्तुत: यह एक नयी चुनौती खड़ी करती है कि प्रत्यक्ष अनुभव और क्रियाकलाप को अमूर्त सिद्धांतों से कैसे जोड़ा जाए, कैसे वह दृष्टि विकसित की जाए जो भाषा, विचार और अनुभव के संबंध को मज़बूत करे। इस संदर्भ में नयी तालीम के जो साहित्य उपलब्ध हैं वे कताई और अन्य विषयों के संबंध की चर्चा करते हैं। मैंने अवलोकन के दौरान देखा कि विद्यार्थियों के रोज़मर्रा की अनेक गतिविधियाँ विद्यालय में सीखने-सिखाने का साधन थीं। परिवार, समुदाय और दोस्तों के समूह के साथ वे जो करते हैं, उन्हें विद्यालय में सीखने का संसाधन बनाया जाता है। खेती-कार्य के दौरान इसके उदाहरण देखें। विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी क्यारी की निराई की। इसके बाद इन सभी विद्यार्थियों को शिक्षक ने खेत के किनारे इकट्ठा किया और बोयी जाने वाली फ़सल का उदाहरण लेते हुए कंदवर्गीय और बेलवर्गीय फ़सलों की संकल्पना को समझाया। इस चर्चा में एक औपचारिक कक्षा की तरह इन फ़सलों के पोस्टर या चार्ट तो नहीं थे, लेकिन बच्चों के पास इन फ़सलों के अनेक उदाहरण थे, जिन्हें विद्यार्थी खेत में ही खोज रहे थे। हल्दी की सफ़ाई के दौरान विद्यार्थी केवल यंत्रवत अभ्यास नहीं कर रहे थे। शिक्षक उन्हें यह भी समझा रहे थे कि हल्दी की गांठ जड़ न होकर तना है। इसकी तुलना उन्होंने आलू, प्याज़, अदरक और लहसुन से की।

विद्यालय और विद्यालय के बाहर की दुनिया के जिस अंतर को पाटने की पैरवी प्राय: की जाती है, उसकी पहल आनंद निकेतन की प्रार्थना सभा में देखने को मिली। अन्य विद्यालयों की तरह प्रार्थना, संबोधन और सूचना के अतिरिक्त विशिष्ट यह था कि प्रात:कालीन सभा केवल कक्षा और विषय को सीखने की गतिविधियों से संबंधित नहीं करती। इसमें सूचना दी गई कि बैठक व्यवस्था, रसोई और कार्यानुभव से संबंधित दैनिक चक्र का स्वरूप क्या होगा। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यालय विषय ज्ञान

को सिखाने वाली इकाई न होकर एक ऐसी इकाई है जहाँ वे गतिविधियाँ की जाती हैं जो किसी परिवार या समुदाय में होती हैं। इस तरह से विद्यालय का दैनिक चक्र, विद्यालय के बाहर परिवार और समुदाय के दैनिक चक्र के साथ संबद्ध हो जाता है। यह संबद्धता 'पढ़े-लिखे' की रूढ़ छवि को तोड़ने का माध्यम बनती है। विद्यार्थी केवल लिखने-पढ़ने का कार्य नहीं करते, वे शिक्षकों के साथ विद्यालय का प्रबंधन वैसे ही करते हैं, जैसे किसी संस्था या व्यवस्था का संचालन होता है। रसोई के कार्य में विद्यार्थी अपने रोज़मर्रा के ज्ञान का प्रयोग करते हैं, लेकिन वे संतुलित आहार, बाज़ार की कीमतों, वस्तुओं के प्रयोग के अनुपात का भी अभ्यास करते हैं। इसी तरह कताई के दौरान वे कपास को कातने के साथ मापन का कार्य सीखते हैं। विद्यालय, घर और समुदाय जैसा लगता है। उनके टहलने, खेलने, खाने और बातचीत करने पर कोई अनुशासन का पहरा नहीं था। विद्यार्थी छुट्टी के बाद रुकने से हिचकते नहीं और समय से पूर्व विद्यालय आने को उतावले रहते हैं।

आनंद निकेतन में हस्तशिल्प के माध्यम से लोककला, संगीत, अन्य प्रदर्शनकारी कलाएँ औपचारिक शिक्षा में केंद्रीय स्थान प्राप्त करती हैं। संगीत की कक्षा में देखा गया कि विद्यार्थी गुरुजी की सीख को केवल दुहरा नहीं रहे थे, बल्कि गुरुजी उन्हें अनुपात, आवृत्ति और आरोह-अवरोह से परिचित करा रहे थे। इसी तरह लिफ़ाफ़ा बनाना सीखने के दौरान आकृति का परिमाप, लिफ़ाफ़े की कलात्मकता को बढ़ा रहा था। रंग निर्माण के दौरान चुकंदर एवं पालक के पानी का उपयोग केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि कला और विज्ञान का अद्भुत संयोजन थी। धीरेन्द्र मजूमदार (2005) ने सही पहचाना है कि नयी तालीम में न तो प्योर साइंस है और न ही अप्लाइड साइंस, बल्कि यह एक रिक्वायर्ड साइंस है।

सशक्त शिक्षक

नयी तालीम शिक्षक की विश्वदृष्टि और शिक्षण पद्धति में अलगाव को समाप्त करती है। प्राय: 'शिक्षक-विश्वास' के संप्रत्यय द्वारा शिक्षक की विश्वदृष्टि की व्याख्या की जाती है। जैसा कि आनंद निकेतन विद्यालय में देखा गया और शिक्षकों के साक्षात्कार से प्रकट हुआ कि शिक्षक श्रम, अनुभव, समानता, पंथ निरपेक्षता के प्रति गाँधीवादी नज़रिए को अपनाते हैं और शिक्षण में उसे उतारते हैं। अपनाने और उतारने में समानता, ज्ञान और अभ्यास के बीच दूरी को कम करते हैं। वस्तुत: शिक्षक अपनी जिज्ञासा और बच्चे की जिज्ञासा के बीच समन्वय करके ज्ञान का निर्माण करते हैं।

प्राय: शिक्षक को एक कर्मचारी की हैसियत से उसके वेतन के सापेक्ष देखा जाता है। नयी तालीम विद्यालय के एक शिक्षक ने इस संदर्भ को एक अन्य दृष्टि प्रस्तुत की। इस शिक्षक ने आनंद निकेतन विद्यालय के पूर्व वर्धा ज़िले के एक 'कॉन्वेंट विद्यालय' में अध्यापन कार्य किया था। आनंद निकेतन में कार्य करते हुए उन्हें अकोला के निजी विद्यालय से अधिक वेतन पर कार्य करने का अवसर आया। वे बताते हैं कि जो 'संतुष्टि' उन्हें आनंद निकेतन में मिलती है, वह धन से नहीं आंकी जा सकती। 'संतुष्टि' को परिभाषित करते हुए उन्होंने

निम्नलिखित संकेतक बताए—काम करने की आज़ादी, नया सोचने का मौका, समाज से जुड़ने का अवसर और जीवन दृष्टि में बदलाव। उन्होंने बताया कि आनंद निकेतन के अनुभव उनके निजी जीवन में भी समानता के मूल्यों के लिए प्रेरक बनें, उनमें सहिष्णुता आई। इन मूल्यों के जीवन में प्रकट होने के संदर्भ में उन्होंने एक उदाहरण साझा किया। उनके स्थानीय समुदाय में अंबेडकर जयंती को मनाने के संदर्भ में विवाद था। इस बारे में उनका दृष्टिकोण पूर्व के वर्षों में उग्र था। आनंद निकेतन के अनुभव से जाना कि कैसे सकारात्मक विरोध करें। तब उन्होंने विरोध कर रहे समूह से उग्र मुकाबला करने के बजाय शांतिपूर्ण तरीके से समुदाय में अंबेडकर के मूल्यों पर चर्चा करने का रास्ता चुना।

विज्ञान विषय की एक शिक्षिका ने विद्यालय की निर्णय प्रक्रिया को अपने सशक्तिकरण के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि उन्हें आनंद निकेतन में आए अधिक समय नहीं हुआ है, लेकिन जिस तरीके से विद्यालय के निर्णयों में उन्हें अपनी बातें रखने के लिए आमंत्रित किया जाता है, उससे उनमें यह आत्मविश्वास आया है कि वे नए विचारों को रखें और जिससे असहमत हैं, उन पर भी टिप्पणी करें। इस शिक्षिका ने एक और महत्वपूर्ण अनुभव का उल्लेख किया कि विद्यालय में सीखी निर्णय प्रक्रिया की विधि को वे अपने परिवार के सदस्यों खासकर छोटे भाई-बहन के साथ कार्यान्वयन करने लगी हैं।

विद्यालय में यह भी देखने को मिला कि यहाँ 'सीनियर', 'जूनियर', 'गणित के अध्यापक' और 'विज्ञान के अध्यापक' जैसी पदानुक्रमिक श्रेणियाँ नहीं हैं। सभी विद्यालय के संचालन और दायित्व निर्वहन में बराबर के भागीदार हैं। रसोई, सफ़ाई, शौचालय की सफ़ाई, परिसर की व्यवस्था, हिसाब-किताब में हिस्सा लेते हैं। गणित की शिक्षिका भी बच्चों के साथ खेत में साग के बंडल बनाती हैं। कताई के अध्यापक बच्चों को गणित सिखाते हैं। विद्यालय की प्रधानाध्यापिका प्राइमरी की कक्षाओं में अंग्रेज़ी पढ़ाती हैं। यह देखने को मिला कि प्रात:कालीन सभा से पूर्व कक्षा के बाहर विद्यार्थियों की चप्पलें अव्यवस्थित रखी थीं। बिना बच्चों को डांटे-डपटे शिक्षक ने ही इसे व्यवस्थित किया।

विद्यालय की निर्णय प्रक्रिया लोकतांत्रिक है। इसके योजनाबद्ध संचालन के लिए हर शनिवार और बुधवार को बैठक होती है। इन बैठकों में पिछली योजना की समीक्षा और आगामी सप्ताह के लिए योजनाओं का विकास किया जाता है। इस दौरान विद्यालय स्तर की गतिविधियों, कक्षा स्तर की गतिविधियों, शिक्षण पद्धति और रचनात्मक कार्यों के आयोजन के बारे में निर्णय लिए जाते हैं। इसी तरह की निर्णय प्रक्रिया में बच्चों को शामिल करने के लिए बाल सभा का आयोजन होता है। इस आयोजन में बच्चे विद्यालय की गतिविधियों के बारे में अपनी राय रखते हैं।

विद्यार्थियों के अनुभव

विद्यार्थियों ने शिक्षक के साथ अपने संबंध की विशिष्टता को व्यक्त करते हुए बताया कि वे अपने अध्यापकों को भाऊ, ताई, भैया, दीदी पुकार सकते हैं। पूछे जाने पर विद्यार्थियों का तर्क था कि 'सर' और 'मैडम' केवल पढ़ाते हैं, ये दीदी और भैया

की तरह हर काम करते हैं। हर काम की व्याख्या करते हुए बताया कि हमारे साथ खेत में काम करते हैं, गाते हैं, खेलते हैं, भोजन पकाते हैं। विद्यार्थियों के विचार शिक्षक-विद्यार्थी के संबंध में निजता को एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में स्थान देते हैं। चर्चा के दौरान एक विद्यार्थी ने कहा कि उसे अपने विद्यालय में डर नहीं लगता। विद्यालय के साथ डर के प्रयोग को उस विद्यार्थी ने अपने पड़ोस के लड़के के उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया। उसका दोस्त परीक्षा के भय, पी.टी. के भय के कारण कई बार स्कूल नहीं जाना चाहता, लेकिन वह अपने विद्यालय (आनंद निकेतन) हर रोज़ आना चाहता है। विद्यार्थियों के एक समूह से पूछा गया कि वे विद्यालय का कोई एक प्रभाव बताएँ जो उनके रोज़मर्रा की ज़िंदगी में दिखता हो। कुछ इस प्रकार के विचार सामने आए —

'पहले मैं घर जाकर जूते को कूलर के ऊपर रख देता था, बैग और कपड़े मम्मी को संभालने के लिए छोड़ देता था। जब स्कूल में देखा कि सभी के जूते, चप्पल एक लाइन में रखे जाते हैं, तो मैंने अपने घर में दरवाज़े के बगल वाली दीवार के पास वैसे ही सबके जूते, चप्पल रखना शुरू कर दिया।'

'पहले मुझे बर्तन साफ़ करना, खेत में काम करने में मज़ा नहीं आता था, अब घर पर मैं इन कामों में रुचि लेता हूँ।'

'छुट्टी के दिन खाली समय में मैं स्कूल की प्रार्थना को घर पर दुहराता हूँ। चलते चलो और चलते चलो, लहरों के लपेटों में पलते चलो...'

मुक्त अनुशासन और भय की दृष्टि से देखने पर आनंद निकेतन में एक आत्मानुशासित और भयमुक्त माहौल मिलता है। क्षेत्र कार्य के प्रथम दिन एक विद्यार्थी एक वयस्क को लिपट कर चल रहा था। दोनों एक-दूसरे को खींच रहे थे। इस दृश्य को देखकर लगा कि वह व्यक्ति अभिभावक होगा। साथ खड़े एक अन्य विद्यार्थी ने बताया कि वह वयस्क शिक्षक है। शिक्षक और विद्यार्थी के संबंध में निकटता का यह अवलोकन सत्ता-जनित भय से मुक्त परिसर का प्रमाण है। इसी तरह, विद्यालय के किसी शिक्षक या प्रधानाचार्य को देखकर विद्यार्थी या कोई अन्य सदस्य असहज नहीं होता है। वे अपना स्वाभाविक कार्य करते रहते हैं। शिक्षक और प्रधानाचार्य की ओर से भी अनुशासन के संदर्भ में कोई 'आदेश' देते नहीं पाया गया। क्षेत्र कार्य के दौरान एक भी उदाहरण देखने को नहीं मिला, जहाँ कि विद्यार्थियों और शिक्षकों को निर्देश देते हुए नकारात्मक वाक्यों का प्रयोग किया गया हो। यह भी देखने को मिला कि कोई विद्यार्थी भंडार कक्ष, कंप्यूटर प्रयोगशाला, प्रधानाध्यापिका के कक्ष आदि स्थानों पर जा सकता है। इन स्थानों पर विद्यार्थियों का असमय और बिना अनुमति के प्रवेश को अस्वाभाविक नहीं माना जाता। कक्षा 3 में गणित पढ़ाया जा रहा था। इस दौरान एक बच्चे ने कहा कि मुझे भूख लगी है। दीदी ने बाकी बच्चों से भी पूछा। कक्षा ने फ़ैसला किया कि पहले वे भोजन करेंगे, फिर पढ़ेंगे। बच्चों के साथ दीदी ने भी अपना टिफ़िन खोला।

गाँधीवादी मूल्यों के आत्मसात्मीकरण का उदाहरण कक्षा 9 में मासिक टेस्ट के दौरान देखने को मिला। इस कक्षा में परीक्षा के दौरान कोई कक्ष

निरीक्षक नहीं था, लेकिन परीक्षा की शुचिता कायम थी। इसी के समांतर एक अन्य उदाहरण है— कक्षा 10 के विद्यार्थी दूसरे विद्यालय में बोर्ड की परीक्षा दे रहे थे, वहाँ अन्य विद्यालयों के विद्यार्थी भी थे। जब बाकी के विद्यार्थी नकल करने के लिए उतावले थे तो आनंद निकेतन के विद्यार्थियों ने असहमति जताई। अगले दिन जबरन इनकी उत्तर पुस्तिका से नकल करने की कोशिश की गई तो आनंद निकेतन के विद्यार्थी अपनी प्राचार्या से मिले और मदद माँगी। यह घटना प्रमाण है कि विद्यार्थियों ने जिन मूल्यों को सीखा है, वे उनके व्यवहार का अभिन्न हिस्सा हैं।

''तेरा बच्चा वहाँ (आनंद निकेतन) पढ़ता है फिर भी होशियार है।''

यह कथन एक अभिभावक का है जो विद्यालय की छुट्टी के बाद अपने बच्चे को लेने आए थे। इस अभिभावक ने विद्यालय के संबंध में स्थानीय समुदाय के पूर्वाग्रह पर चर्चा की। उसने बताया कि उसके साथी ऐसा मानते हैं कि आय कम होने के कारण वह अपने बच्चे को आनंद निकेतन पढ़ने के लिए भेजता है। जबकि अभिभावक ने बताया कि वह अपने बच्चे को गाँधी जैसा इनसान बनाने के लिए आनंद निकेतन में भेजता है। उसके साथी जो विद्यालय की पास वाली सड़क से गुज़रते हैं, कई बार व्यंग्य कसते हैं कि 'तू अपने बच्चे को कारखाने भेजता है या स्कूल।' उन्हीं में जब एक साथी एक दिन उनके घर आया और जब उसने बच्चे को अँग्रेज़ी पढ़ते देखा तो उसका कथन था कि तेरा बच्चा होशियार है। इस अभिभावक ने गाँधी जैसे इनसान की अग्रलिखित विशेषताएँ बताईं—

'प्रतिस्पर्धा का दौर है, हम बच्चों को सिखाते हैं कि स्पर्धा करें, कोई तुझसे आगे नहीं जाए। इससे (बच्चों के बीच) दोस्ती टूट जाती है। इस स्कूल के बच्चों में ऐसी भावना नहीं है। वे समूह में रहना और सीखना चाहते हैं और अपने आप से प्रतिस्पर्धा करते हैं।'

निष्कर्ष

सेवा-पूर्व शिक्षकों के समूह के साथ विद्यालय की प्रधानाचार्या जब चर्चा कर रही थीं तो मैंने आनंद निकेतन के लिए 'वैकल्पिक विद्यालय' शब्द का प्रयोग किया। इस शब्द के प्रयोग पर प्रधानाचार्या की प्रतिक्रिया थी कि 'हम तो वह सब कार्य कर रहे हैं जिसे करने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में कहा गया है तो हम कैसे वैकल्पिक विद्यालय हुए?' आपका यह जवाब विद्यालय और समाज के संबंध के बारे में आनंद निकेतन की अद्वितीयता को प्रकट करता है। समाज के लिए विद्यालय की भूमिका के जिस मॉडल को आनंद निकेतन चरितार्थ कर रहा है, उसके मूल में संवैधानिक मूल्य निहित हैं। इस दावे को कहना जितना आसान है, उसे विद्यालय की दिनचर्या और शिक्षण पद्धति का हिस्सा बनाना उतना ही कठिन है। यह पाया गया कि आनंद निकेतन ने अपने स्वाभाविक विकास क्रम में इन मूल्यों को अपनाया है। हालाँकि, नयी तालीम के मूल दस्तावेज़ में इनका कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन नयी तालीम के सिद्धांतों को विश्लेषित करने पर आप पाएँगे कि यह व्यवस्था समतामूलक और न्याय आधारित समाज की स्थापना को अपना आदर्श मानती है। इस आदर्श को कार्यान्वित करने

के लिए आनंद निकेतन विद्यालय औपचारिक शिक्षा की प्रचलित ज्ञान संरचना विषय में विभाजन, अध्ययन-परीक्षा चक्र और पद्धति के बदले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में स्थापित ज्ञान, कुशलता और पद्धति को चुनता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह विभिन्न ज्ञानानुशासनों में विकसित और निर्मित ज्ञान व विधियों को अस्वीकार करता है, बल्कि इस स्तर तक पहुँचने की शुरुआत परिवेश से होती है, जहाँ सीखने वाला एक स्वावलंबी और स्वतंत्र चिंतक है, जो न केवल विचार को सीखने का माध्यम और मूल मानता है, बल्कि वह पदार्थ (परिवेश) के साथ अपने संबंध को विश्लेषित करने के नज़रिए का विकास करता है।

दयालचंद्र सोनी (2012) बुनियादी शिक्षा की 'बुनियाद' की व्याख्या तीन रूपों में करते हैं। प्रथम, इसकी बुनियाद सामुदायिक गतिविधियों में है। द्वितीय, गाँधीवादी विचारधारा पर आधारित होने के कारण इसकी वैचारिक बुनियाद है। तृतीय, यह मानव जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करती है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण नयी तालीम संगठित बनाम असंगठित, शिक्षित बनाम अशिक्षित, औपचारिक बनाम अनौपचारिक, शहरी बनाम ग्रामीण, रोज़गार बनाम बेराज़गार की कुछ दुविधाओं, शिक्षित और अशिक्षित होने के दो ध्रुवों और योग्यताओं के रूप न परिभाषित करके इनके संदर्भ में एक भारतीय जीवन दृष्टि का उद्घाटन करती है। नयी तालीम बाल-केंद्रित शिक्षा को केवल कक्षा और विद्यालय के संदर्भ में परिभाषित ही नहीं करती बल्कि इसके द्वारा विद्यार्थी विद्यालय परिसर में भी समुदाय की गतिविधियों से जुड़ा रहता है। उसकी सृजनात्मकता का विकास स्वाभाविक रूप से होता है। इसकी गतिविधियाँ केवल अर्थाजन के लिए उपयोगी नहीं हैं, बल्कि सोद्देश्य, सृजनात्मक और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

संदर्भ

कुमार, कृष्ण. 1993. मोहनदास करमचंद गाँधी (1869–1948). *प्रोसपेक्ट्स — द क्वाटरली व्यू ऑफ़ एजुकेशन*. वॉल्यूम 23, अंक 3/4, पृ. 507–17. यूनेस्को–इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ़ एजुकेशन, पेरिस.

गाँधी, एम. 1938. *बेसिक नेशनल एजुकेशन*.

डी.सी.सोनी. 2005. *नई तालीम की बुनियाद*. नई तालीम समिति, सेवाग्राम.

शिवदत्त. 2012. *नई तालीम —एक विहंगावलोकन*. नई तालीम समिति, सेवाग्राम.

साइकस, एम. 1993. *नई तालीम की कहानी*. नई तालीम समिति, सेवाग्राम.

बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री का प्रभाव

नीरज जोशी*
रमा मिश्रा**

भारतीय शिक्षा प्रणाली, विद्यालयों और उच्च शिक्षा में शिक्षकों की कमी का सामना कर रही है। शिक्षकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में शिक्षा तकनीकी के अंतर्गत स्व-अधिगम सामग्री महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह शोध प्रयोगात्मक प्रकृति का था, जिसमें शोधकर्ता द्वारा बी. एड. गणित शिक्षण विषय में कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री के प्रभाव का अध्ययन किया गया। शोध कार्य के उद्देश्य थे —1. कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री वाले समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों की तुलना करना। 2. गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेते हुए, गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना। न्यादर्श तकनीक के रूप में उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श तकनीक का उपयोग किया गया। न्यादर्श आकार 88 था, जिसमें से 42 प्रशिक्षणार्थी प्रयोगात्मक और 46 नियंत्रित समूह में थे। शोध अभिकल्प हेतु गैर-तुल्य नियंत्रित समूह अभिकल्प का उपयोग किया गया। उपकरण के रूप में शोधकर्ता द्वारा विकसित उपलब्धि परीक्षण का उपयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सह-संबंधित 'टी' परीक्षण और 2X2 सह-प्रसरण विश्लेषण का उपयोग किया गया। शोध कार्य के परिणाम थे — 1. विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री प्रयोगात्मक समूह की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि के संदर्भ में सार्थक रूप से प्रभावी पाई गई। 2. बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर क्रमशः जेंडर तथा जेंडर और उपचार की अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

प्रस्तावना

शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली विकास की अनवरत प्रक्रिया है। विद्यार्थियों की जन्मजात शक्तियों के विकास में गणित का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता मात्र ही नहीं समझे जाते बल्कि तर्क-वितर्क की प्रक्रिया में भी भागीदार होते हैं। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षकों को विद्यार्थियों को सक्रिय बनाकर उनकी शारीरिक-मानसिक शक्तियों, योग्यताओं एवं रुचियों का विकास करने का कार्य करना चाहिए। गणित के नियमित अध्ययन से विद्यार्थियों में

* *व्याख्याता* (संविदा), शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर 452001
** *आचार्य*, शिक्षा अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर 452001

Chapter 6.indd 57 10/1/2018 4:34:52 PM

उपर्युक्त गुणों का विकास संभव है, किंतु भारत में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षक एवं विद्यार्थियों का आदर्श अनुपात 1:40 होना चाहिए, परंतु वस्तु स्थिति यह है कि एक शिक्षक द्वारा 48 विद्यार्थियों की कक्षा एक समय में ही ली जा रही है (Seventh AISES, 2006)। शिक्षकों की इस कमी को शिक्षा तकनीकी की सहायता से दूर किया जा सकता है। शिक्षा तकनीकी के अंतर्गत शिक्षक प्रशिक्षण, दृश्य-श्रृव्य सामग्री, अनुदेशन सामग्री, शिक्षण-विधि, शिक्षण-आव्यूह, शिक्षण के स्तर, शिक्षण प्रतिमान, उद्देश्यों का निर्माण, पाठ्यवस्तु विश्लेषण, कंप्यूटर सहायक अनुदेशन आदि सम्मिलित हैं। कंप्यूटर सहायक अनुदेशन पूर्णतः वैयक्तिक अनुदेशन प्रदान करते हैं, इसलिए इसकी सहायता से दूरस्थ क्षेत्रों तक भी अधिगम कराया जा सकता है। साथ ही, प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव को भी कम किया जा सकता है। इसलिए इसकी परिभाषा होगी, "कंप्यूटर सहायक अनुदेशन एक अंतर्क्रियात्मक अनुदेशन तकनीकी है जिसमें कंप्यूटर का उपयोग अनुदेशन सामग्री के प्रस्तुतीकरण एवं अधिगम पर नियंत्रण रखने के लिए किया जाता है।" कक्षा शिक्षण के दौरान शिक्षक के पास शिक्षण के सीमित स्रोत होते हैं और एक ही विषय-वस्तु को शिक्षक बार-बार दोहरा भी नहीं सकता। कंप्यूटर सहायक अनुदेशन की सहायता से अधिगम कराने पर उपर्युक्त समस्याएँ स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। कंप्यूटर द्वारा विद्यार्थियों की गलत अनुक्रियाओं पर त्वरित प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है एवं सही अनुक्रियाओं पर पुनर्बलन प्रदान करने का कार्य किया जाता है। कंप्यूटर सहायक अनुदेशन का कक्षा शिक्षण में प्रयोग करने के लिए इसके भिन्न स्तरों का प्रयोग किया जाता है। ये स्तर अनुवर्ग, पुनर्बलन एवं अभ्यास, अभिरूपण, खेल, समस्या-समाधान आदि हैं। इन स्तरों में से सर्वप्रथम अनुवर्ग स्तर का प्रयोग किया जाता है, इसके पश्चात् अन्य स्तरों का प्रयोग किया जाता है।

औचित्य

भारत को विकसित राष्ट्र बनाने में शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रहेगी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में सात वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की साक्षरता दर 73 प्रतिशत है, जिसमें स्त्री साक्षरता की दर 64.6 प्रतिशत तथा पुरुष साक्षरता की दर 80.9 प्रतिशत है। इसके साथ 15 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की साक्षरता दर 63.3 प्रतिशत है, जिसमें स्त्री साक्षरता की दर 59.3 प्रतिशत तथा पुरुष साक्षरता 78.8 प्रतिशत है। शिक्षा व्यक्ति को साक्षर करने के साथ-साथ उसे जागरूक करने का भी कार्य करती है। यह जागरूकता उत्पन्न करने में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, किंतु विद्यालयों और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं। वर्ष 2011–12 में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात प्राथमिक विद्यालयों में 41, उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 34, माध्यमिक विद्यालयों में 32, उच्च माध्यमिक विद्यालयों में 33 तथा उच्च शिक्षा में 24 थी। इन आँकड़ों से पता चलता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली प्राथमिक विद्यालयों और उच्च शिक्षा में शिक्षकों की कमी का सामना कर रही है। शिक्षकों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण में शिक्षा तकनीकी के अंतर्गत स्व-अधिगम सामग्री महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

वर्ष 2014 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा स्वयं (SWAYAM—Study Webs of Active-Learning for Young Aspiring Minds) योजना प्रारंभ की गई। जिसके अंतर्गत आई.आई.टी., आई.आई.एम. और केंद्रीय विश्वविद्यालयों द्वारा ऑनलाइन पाठ्यक्रम उपलब्ध किए गए हैं। ये पाठ्यक्रम विभिन्न संकायों अभियांत्रिकी, शिक्षा, सामाजिक विज्ञान, प्रबंधन, ऊर्जा एवं विज्ञान से संबंधित हैं। उपरोक्त पाठ्यक्रमों हेतु विषय-वस्तु कंप्यूटर एवं इंटरनेट के माध्यम से प्रदान की जाती है। किंतु वर्तमान में इस प्रकार के पाठ्यक्रमों हेतु उपयुक्त सामग्री का अभाव है। इस शोध में कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री के निर्माण में प्रयुक्त तकनीकी का उपयोग उपरोक्त पाठ्यक्रमों में सहायता प्रदान कर सकता है।

यूनेस्कों (2007) के शिक्षक शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ में उल्लेख किया गया है कि सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी ऐसी होनी चाहिए जो कि उच्च गुणवत्ता की एवं अर्थपूर्ण हो, इसके साथ शिक्षक और विद्यार्थी उसका आसानी से उपयोग कर सकें। शिक्षण के दौरान शिक्षक को विषय-वस्तु, तकनीकी, शिक्षाशास्त्र और आकलन का एकीकृत रूप में उपयोग करना चाहिए। इसके अंतर्गत अधिगम उद्देश्यों का निर्धारण, विषय-वस्तु का चयन एवं विश्लेषण, उपयुक्त शिक्षण विधियों एवं तकनीक का चयन तथा विभिन्न आकलन तकनीकी सम्मिलित हैं। इस शोध हेतु कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री का निर्माण उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया था।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक भारत में उच्च शिक्षा में नामांकन की दर 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक थी। वर्ष 2020 तक इस दर को 30 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी आवश्यक सहायता प्रदान कर सकती है। इसी प्रकार वर्ष 2012–13 में उच्च शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा संकाय में कुल नामांकन 3.45 प्रतिशत रहा, जिसमें से बी. एड. पाठ्यक्रम में नामांकन 2.01 प्रतिशत था। इसमें से पुरुषों का नामांकन 1.34 प्रतिशत और महिलाओं का नामांकन 2.84 प्रतिशत था। उपरोक्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि उच्च शिक्षा तथा शिक्षा संकाय में नामांकन की दर काफ़ी कम है। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी की सहायता से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन एवं प्रशिक्षित शिक्षकों के नामांकन में भी वृद्धि की जा सकती है। इसलिए समय एवं परिस्थितियों की माँग को ध्यान में रखकर स्व-अनुदेशन सामग्री के रूप में कंप्यूटर सहायक अधिगम सामग्री का उपयोग आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार की अधिगम सामग्री में विषय-वस्तु का छोटे-छोटे पदों में प्रस्तुतीकरण स्वगति से अधिगम में सहायक सिद्ध होता है। कंप्यूटर सहायक अधिगम सामग्री की सहायता से विद्यार्थियों की कमज़ोरियों का निदान और उपचार आसानी से किया जा सकता है एवं विद्यार्थियों द्वारा सही अनुक्रिया करने पर उन्हें पुनर्बलन भी प्रदान किया जाता है। स्व-अनुदेशन सामग्री विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता को दूर करने का कार्य करती है और होशियार एवं कमज़ोर विद्यार्थियों के लिए समान रूप से लाभप्रद सिद्ध होती है।

स्व-अधिगम सामग्री के प्रस्तुतीकरण में कंप्यूटर का उपयोग विषय-वस्तु को रोचक व आकर्षक बना देता है। विद्यार्थी विषय-वस्तु को बार-बार दोहरा सकते हैं, जो कि साधारण कक्षा शिक्षण में संभव नहीं हो पाता है। कंप्यूटर सहायक अनुदेशन से अधिगम करने पर विद्यार्थियों में नियमित अध्ययन करने की आदत विकसित होती है। वर्तमान में आदर्श शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 1:40 से कहीं अधिक संख्या में विद्यार्थी कक्षा में शिक्षण कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक के लिए प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान देना संभव नहीं हो पाता है, इसलिए कंप्यूटर सहायक अनुदेशन की सहायता से योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव को कम किया जा सकता है।

बी. एड. के प्रशिक्षणार्थियों के लिए शिंदे (2002) द्वारा संप्रेषण शीर्षक पर कंप्यूटर सहायक अनुदेशन का निर्माण किया गया। कंप्यूटर सहायक अनुदेशन का निर्माण विद्यालयी विद्यार्थियों के लिए विभिन्न विषयों, जैसे— गणित (नागर, 1988; सिंह, 1992; स्टेला, 1992; वाहल, 1992; बर्टन, 1995, विलियम्स, 1996; फ्रेंच, 1997), भौतिकी (प्रभाकर, 1995; नालायिनी, 1998; काधीरवन, 1999; रंगराजन और बालसुब्रमण्यम, 2002; भट्ट, 2010), रसायन (महापात्रा, 1991; पार्क, 1993; वाटकिंस, 1996; खिरवाधकर, 2001; लूल्ला, 2008; बेबी 2013), जीव-विज्ञान (अधिकारी, 1992; शाह और अग्रवाल, 1998; घोरे, 2002; त्यागी, 2011; जोसेफ, 2012; प्रतिभा, 2014), भूगोल (यादव, 2011), अंग्रेज़ी (फान्टे, 1995; मनीकुल, 1996; दास, 1998; ज्योद, 1999), विज्ञान (विज, 2003; अग्रवाल, 2007) पर किए गए। उपरोक्त शोध अध्ययनों से ज्ञात होता है कि बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों को लेकर कंप्यूटर सहायक अनुदेशन से संबंधित एकमात्र शोध अध्ययन हुआ है। इसलिए शोधकर्ता द्वारा गणित-शिक्षण में कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री को लेकर शोध अध्ययन किया गया।

तकनीकी शब्दों की परिभाषा

कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री— कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री ऐसी अधिगम सामग्री है, जिसमें कंप्यूटर का उपयोग विद्यार्थियों के मार्गदर्शन, अधिगम और परीक्षण के लिए किया जाता है ताकि वे वांछित दक्षता प्राप्त कर सकें।

गणित शिक्षण-विधि— गणित शिक्षण-विधि से तात्पर्य बी. एड. पाठ्यक्रम के गणित शिक्षा वाले प्रश्न-पत्र से है, जिसके अंतर्गत विशिष्ट उद्देश्यों का लेखन, शिक्षण-विधि, पाठ योजना तथा मापन और मूल्यांकन सम्मिलित है।

शोध के उद्देश्य

इस शोध के निम्न उद्देश्य थे—

- कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री वाले समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों की तुलना करना।
- गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेते हुए, गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

इस शोध की निम्न शून्य परिकल्पनाएँ थीं —

- कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री वाले समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं है।
- गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेते हुए, गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं है।

न्यादर्श

इस शोध अध्ययन की संख्या के अंतर्गत सत्र 2013–14 के भोपाल (म.प्र.) के बी.एड. के गणित शिक्षण-विधि विषय वाले प्रशिक्षणार्थी थे। न्यादर्श तकनीक के रूप में उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श तकनीक का उपयोग किया गया था। न्यादर्श आकार 88 था, जिसमें से 42 प्रशिक्षणार्थी प्रयोगात्मक और 46 नियंत्रित समूह में थे। ये प्रशिक्षणार्थी 26 से 36 आयु वर्ग के पुरुष और महिला प्रशिक्षणार्थी थे तथा भिन्न शैक्षिक अनुभव और शैक्षिक योग्यता वाले थे। न्यादर्श का वर्णन इस प्रकार है —

सारणी 1 — समूह और जेंडर के आधार पर प्रशिक्षणार्थियों का विवरण

समूह	पुरुष	महिला	कुल
प्रयोगात्मक	20	22	42
नियंत्रित	21	25	46
योग	41	47	88

शोध अभिकल्प

इस शोध अध्ययन की प्रकृति प्रयोगात्मक थी। इस हेतु गैर-तुल्य नियंत्रित समूह अभिकल्प (स्टेनले और केम्पबेल, 1963) का उपयोग किया गया। इस अभिकल्प का चित्रात्मक प्रतिनिधित्व इस प्रकार है —

0 X 0
---
0 0

जहाँ 0 — अवलोकन

X — उपचार

-------- गैर तुल्यता को प्रदर्शित करता है

इस शोध अध्ययन में स्वतंत्र चर गणित शिक्षण-विधि विषय पर विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री तथा आश्रित चर गणित शिक्षण-विधि विषय पर विकसित उपलब्धि परीक्षण था।

प्रयुक्त उपकरण

बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि के आकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा उपलब्धि परीक्षण का निर्माण किया गया। इसी परीक्षण का उपयोग पूर्व उपलब्धि परीक्षण और पश्च उपलब्धि परीक्षण के रूप में क्रमांकवार किया गया। उपलब्धि परीक्षण की वैधता स्थापित करने के लिए इसकी विषय-वस्तु वैधता स्थापित की गई। इस हेतु विषय विशेषज्ञों की राय ली गई। जिसमें उन्होंने इसे उद्देश्यों के आधार पर निर्मित पाया। साथ ही इस उपलब्धि परीक्षण की सहायता से बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के जेंडर और शिक्षण अनुभव से संबंधित जानकारी एकत्रित की गई। यह उपलब्धि परीक्षण बी.एड. के गणित शिक्षण-विधि विषय के चयनित शीर्षकों पर आधारित था। ये शीर्षक थे —

- गणित शिक्षण के उद्देश्य और प्राप्य उद्देश्य;
- गणित शिक्षण की विधियाँ;
- मापन और मूल्यांकन; और
- पाठ योजना।

उपरोक्त शीर्षकों पर आधारित उपलब्धि परीक्षण का निर्माण अंग्रेज़ी भाषा में किया गया। इस उपलब्धि परीक्षण में समस्त पद बहुविकल्पीय प्रकृति के थे। प्रत्येक प्रश्न हेतु चार विकल्प दिए गए थे। जिसमें से बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को एक सही विकल्प का चयन करना था। सही विकल्प का चयन करने पर बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को एक अंक और गलत विकल्प का चयन करने पर शून्य प्रदान किया गया। फलांकन की प्रक्रिया के दौरान ऋणात्मक अंकन का प्रयोग नहीं किया गया।

प्रदत्तों का संकलन

प्रदत्तों के संकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा भोपाल के बरकतउल्ला विश्वविद्यालय से संबद्ध क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी.) का प्रयोगात्मक समूह तथा आनंद एवं राजीव गाँधी बी.एड. महाविद्यालय का नियंत्रित समूह के रूप में चयन कर संबंधित प्राचार्य/विभागाध्यक्ष महोदय से शोधकार्य हेतु अनुमति प्राप्त की गई। अनुमति प्राप्त होने के पश्चात् प्रयोगात्मक समूह पर क्रमशः पूर्व उपलब्धि परीक्षण, उपचार तथा पश्च उपलब्धि परीक्षण का प्रशासन किया गया। इसी प्रकार नियंत्रित समूह पर क्रमशः पूर्व उपलब्धि परीक्षण, परंपरागत विधि द्वारा शिक्षण और पश्च उपलब्धि परीक्षण का प्रशासन किया गया।

इस प्रकार, प्रयोगात्मक समूह के प्रशिक्षणार्थियों को गणित शिक्षण-विधि विषय पर आधारित प्रत्येक (चार) शीर्षक के अधिगम हेतु बारह दिनों अर्थात् कुल 48 दिनों तक अधिगम कार्य करवाया गया। इस हेतु प्रशिक्षणार्थियों को प्रति दिवस 50 मिनट का समय कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री के अध्ययन हेतु उपलब्ध करवाया गया। इसी प्रकार नियंत्रित समूह के प्रशिक्षणार्थियों को भी गणित शिक्षण-विधि विषय पर आधारित चारों शीर्षक की विषय-वस्तु को 48 दिनों तक परंपरागत शिक्षण विधियों द्वारा शिक्षण कार्य करवाया गया। इस हेतु प्रत्येक दिवस 50 मिनट का शिक्षण कार्य किया गया।

सारणी 2— इकाईवार और उद्देश्यवार प्रश्नों की संख्या

क्रमांक	इकाई	प्रश्नों का स्तर			कुल
		ज्ञान	*अवबोध*	*अनुप्रयोग*	
1.	गणित शिक्षण के उद्देश्य और प्राप्य उद्देश्य	7	7	6	20
2.	गणित शिक्षण की विधियाँ	5	8	7	20
3.	मापन और मूल्यांकन	6	5	5	16
4.	पाठ योजना	7	7	5	19
	योग	25	27	23	75

प्रदत्तों का विश्लेषण

गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों की तुलना

'कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री वाले समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों की तुलना करना' के विश्लेषण हेतु सह-संबंधित 'टी' परीक्षण का उपयोग किया गया। जिससे प्राप्त परिणामों को सारणी 3 में दिया गया है।

सारणी 3 से स्पष्ट होता है कि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व एवं पश्च परीक्षण के लिए सह-संबंधित 'टी' का मान 30.50 है, जिसके लिए सार्थकता का मान 0.00 है, जो सार्थकता के 0.01 मान से कम है अर्थात् सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है, जबकि df = 40 है तथा सह-संबंध गुणांक (r) का मान 0.34 है। इसका अर्थ है कि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व एवं पश्च परीक्षण के माध्य प्राप्तांकों में सार्थक अंतर है। इस आधार पर शून्य परिकल्पना ''कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री वाले समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के पूर्व एवं पश्च माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं है'' निरस्त की जाती है। आगे सारणी से स्पष्ट है कि पश्च परीक्षण का माध्य प्राप्तांक 56.98 है जो पूर्व परीक्षण के माध्य प्राप्तांक 21.86 से सार्थक रूप से उच्च है। अतः कहा जा सकता है कि गणित शिक्षण-विधि विषय पर विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री प्रयोगात्मक समूह की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर सार्थक रूप से प्रभावी पाई गई।

इसका कारण यह भी हो सकता है कि प्रस्तुत सामग्री के पृष्ठों (स्लाइड्स) पर विषय-वस्तु का न तो बहुत अधिक और न बहुत कम प्रस्तुतीकरण किया गया। इसके साथ ही विषय-वस्तु का सरल शब्दों में प्रस्तुतीकरण, रंग-संयोजन, पृष्ठभूमि, शब्दों का आकार एवं रंग, क्रमबद्धता और आवश्यकतानुसार विषय-वस्तु का अध्ययन करने की स्वतंत्रता के कारण प्रशिक्षणार्थियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया गया होगा। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के प्रश्नों ने प्रशिक्षणार्थियों के अधिगम को सक्रिय बनाए रखने का कार्य किया होगा। साथ ही इन प्रश्नों द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को समान रूप से निदान, उपचार एवं पुनर्बलन प्रदान किया गया होगा। इसलिए गणित शिक्षण-विधि विषय पर विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री प्रयोगात्मक समूह की गणित शिक्षण-विधि

सारणी 3 — प्रयोगात्मक समूह के गणित शिक्षण-विधि में पूर्व एवं पश्च परीक्षण के माध्य प्राप्तांकों, N, df, SD, r, t का विवरण

परीक्षण	माध्य	N	df	SD	r	t	Sig
पूर्व परीक्षण	21.86	42	40	6.49	0.34	30.50	0.00
पश्च परीक्षण	56.98	42		6.47			

विषय में उपलब्धि पर सार्थक रूप से प्रभावी पाई गई होगी।

गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया का प्रभाव

इस शोध अध्ययन का दूसरा उद्देश्य गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेते हुए, गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना था। प्रस्तुत उद्देश्य से संबंधित प्रदत्त विश्लेषण हेतु 2X2 सह-प्रसरण विश्लेषण (Two Way ANCOVA) का उपयोग किया गया था। जिसका सारांश सारणी 4 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 4 — गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार, जेंडर तथा इनकी अंतर्क्रिया के प्रभाव के लिए प्रयुक्त 2X2 द्विमार्गीय सह-प्रसरण विश्लेषण का सारांश

विचरण के स्रोत	df	SSy.x	MS-Sy.x	Fy.x	Sig
उपचार	1	1287.8	1287.8	25.35	0.00
जेंडर	1	290.50	290.50	5.72	0.13
उपचार X जेंडर	1	8.38	8.38	0.17	0.45
त्रुटि	83	4216.89	50.81		
कुल	86				

सारणी 4 से स्पष्ट है कि उपचार के लिए समायोजित 'F' का मान 25.35 है जिसके लिए df=1,83 पर द्विमार्गीय सार्थकता का मान 0.00 है जो सार्थकता के स्तर 0.01 से छोटा है, अतः सार्थकता के स्तर 0.01 पर सार्थक है। अर्थात् कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री समूह एवं परंपरागत शिक्षण समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में सार्थक अंतर है। अतः इस स्थिति में शून्य परिकल्पना ''गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेकर कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री और परंपरागत शिक्षण-विधि वाले समूह के गणित शिक्षण-विधि विषय में समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं है'' निरस्त की जाती है। दोनों शिक्षण-विधियों के समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों के मध्य तुलना हेतु सारणी 5 में समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों का मान दिया गया है।

सारणी 5 — उपचार के समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों को दर्शाती सारणी

उपचार	समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांक
कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री	56.71
परंपरागत शिक्षण विधि	48.88

सारणी 5 से स्पष्ट है कि कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय के समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों का मान 56.71 है जो परंपरागत शिक्षण समूह के प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय में समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों के मान 48.88 से सार्थक रूप से अधिक है अर्थात् कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री समूह के प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि परंपरागत शिक्षण समूह के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में बेहतर पाई गई। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि परंपरागत शिक्षण-विधि की तुलना में विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री, प्रशिक्षणार्थियों

की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि के संदर्भ में सार्थक रूप से प्रभावी पाई गई। इसकी पुष्टि महापात्रा (1991), अधिकारी (1992), सिंह (1992), प्रभाकर (1995), नालायिनी (1998), काधीरवन (1999), खिरवाधकर (2001), घोरे (2002), विज (2003), अग्रवाल (2007), भट्ट (2010), त्यागी (2011), यादव (2011), जोसेफ (2012), बेबी (2013), प्रतिभा (2014) के अध्ययन से होती है।

सारणी 4 से स्पष्ट है कि जेंडर के लिए समायोजित 'F' का मान 5.72 है जिसके लिए df=1,83 पर द्विमार्गीय सार्थकता का मान 0.13 है जो सार्थकता के स्तर 0.05 से बड़ा है, अतः सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि जेंडर के आधार पर कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री और परंपरागत शिक्षण-विधि वाले समूह के गणित शिक्षण-विधि विषय में समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं है, जबकि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया है। अतः इस संदर्भ में शून्य परिकल्पना "प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर जेंडर का सार्थक प्रभाव नहीं है, जबकि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लिया गया हो" निरस्त नहीं की जाती। इसका अर्थ है कि पुरुष एवं महिला प्रशिक्षणार्थियों के गणित शिक्षण-विधि विषय में समायोजित माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अतः प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर जेंडर का कोई प्रभाव नहीं पाया गया। अतः विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री पुरुष एवं महिला दोनों प्रकार के प्रशिक्षणार्थियों के लिए समान रूप से प्रभावी पाई गई। इसकी पुष्टि प्रभाकर (1995), लूल्ला (2008), भट्ट (2010), जोसेफ (2012) के अध्ययन से होती है। इसके विपरीत परिणाम त्यागी (2011) द्वारा प्राप्त किए गए।

उपरोक्त परिणाम के संभावित कारण यह हो सकते हैं कि पुरुष एवं महिला, दोनों प्रकार के प्रशिक्षणार्थयों के लिए सामग्री आकर्षक तथा नवीन थी, इसलिए पुरुष और महिला प्रशिक्षणार्थियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री को समान रूप से अच्छा पाया गया होगा। इसका कारण यह भी होगा कि प्रस्तुत सामग्री के पृष्ठों (स्लाइड्स) पर विषय-वस्तु का न तो बहुत अधिक और न बहुत कम प्रस्तुतीकरण किया गया था। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के प्रश्नों ने प्रशिक्षणार्थियों के अधिगम को सक्रिय बनाए रखने का कार्य किया होगा। साथ ही इन प्रश्नों द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को समान रूप से निदान, उपचार एवं पुनर्बलन प्रदान किया होगा। इसलिए बी.एड. के गणित शिक्षण-विधि विषय वाले प्रशिक्षणार्थियों की उपलब्धि पर जेंडर का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

सारणी 4 से स्पष्ट है कि उपचार एवं जेंडर की अंतर्क्रिया के लिए समायोजित 'F' का मान 0.17 है, जिसके लिए df=1,83 पर द्विमार्गीय सार्थकता का मान 0.45 है, जो सार्थकता के स्तर 0.05 से बड़ा है, अतः सार्थक नहीं है। इसका अर्थ है कि कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री समूह एवं परंपरागत शिक्षण समूह के विद्यार्थियों के जेंडर

से अंतर्क्रिया के आधार पर गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि के समायोजित माध्य प्राप्तांकों में सार्थक अंतर नहीं है, जबकि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया है। अतः इस संदर्भ में शून्य परिकल्पना ''प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर उपचार एवं जेंडर की अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं है, जबकि गणित शिक्षण-विधि विषय में पूर्व उपलब्धि को सहचर लिया गया हो'' निरस्त नहीं की जाती अर्थात् बी.एड. के प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि, उपचार एवं जेंडर की अंतर्क्रिया से स्वतंत्र है।

इस प्रकार, प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री एवं परंपरागत शिक्षण वाले पुरुष और महिला प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि समान रही अर्थात् जिस प्रकार से पुरुष और महिला बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के लिए कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री प्रभावशाली सिद्ध हुई है, उसी प्रकार परंपरागत शिक्षण-विधि भी पुरुष और महिला प्रशिक्षणार्थियों के लिए समान रूप से प्रभावशाली सिद्ध हुई। अतः विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री का उपयोग पुरुष और महिला प्रशिक्षणार्थियों पर समान रूप से किया जा सकता है।

परिणाम

- विकसित कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री प्रयोगात्मक समूह की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि के संदर्भ में सार्थक रूप से प्रभावी पाई गई।
- बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर क्रमशः जेंडर तथा जेंडर और उपचार की अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

शैक्षिक निहितार्थ

- शिक्षक अथवा स्वयं के कक्षा में अनुपस्थित होने पर इस प्रकार की सामग्री प्रशिक्षणार्थी को स्व-अध्ययन हेतु सहायता प्रदान करेगी।
- दूरस्थ विश्वविद्यालयों जहाँ पर स्व-अधिगम सामग्री के रूप में मुद्रित सामग्री का उपयोग किया जाता है, वहाँ इस प्रकार कि सामग्री का उपयोग किया जा सकेगा।
- पाठयक्रम का निर्धारण करते समय उसमें ऐसी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाएगा जहाँ पर प्रशिक्षणार्थी कंप्यूटर का उपयोग करते हुए विषय-वस्तु का अध्ययन कर सकें।
- स्वयं (SWAYAM) पर संचालित या अन्य ऑनलाइन पाठ्यक्रमों हेतु कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री के निर्माण में सहायता प्रदान करेगी।

संदर्भ

कोहली, एम, 2005. *एफ्फिसैय ऑफ़ कंप्यूटर असिस्टेड, कंसेप्ट अटेंमेंट मॉडल ऑन स्टूडेंट्स अचीवमेंट इन एनवायरमेंटल साइंस, सेल्फ़ कंसेप्ट एंड इमोशनल इंटेलिजेंस.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन. यूनिवर्सिटी ऑफ़ राजस्थान, जयपुर.

गोपाल, पी. और आर. मिश्रा. 2007. *कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शन.* महामाया पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

त्यागी, एस. 2011. *डिवेलपमेंट एंड वेलिडेशन ऑफ़ कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शन मॉडल इन लर्निंग बायोलॉजी*. अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन. महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी, रोहतक.

पटेल, के. 2008. *कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शन इन फ़िज़िक्स फ़ॉर द स्टूडेंट्स ऑफ़ क्लास — एन एक्सपेरिमेंटल स्टडी.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन. वी.एन.एस.जी. यूनिवर्सिटी, सूरत.

प्रतिभा. 2014. *ए स्टडी ऑफ़ द इफ़ेक्टिवनेस ऑफ़ कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शन ऑन द अकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ स्टूडेंट्स इन बायोलॉजी एट डिफ़रेंट लेवल्स ऑफ़ इंटेलिजेंस एट सेकेंडरी लेवल.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन, चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ.

बेबी, जे. 2013. *डेवलपिंग ए कंप्यूटर असिस्टेड इंस्ट्रक्शनल पैकेज फ़ॉर लर्निंग आर्गेनिक केमिस्ट्री ऐट हायर सेकेंडरी लेवल.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन. महात्मा गाँधी यूनिवर्सिटी, कोट्टायम.

भट्ट, ए. वाई. 2010. *कंप्यूटर असिसटेड इंस्ट्रक्शन इन फ़िज़िक्स फॉर द स्टूडेंट ऑफ़ स्टैंडर्ड XII— एन एक्सपेरिमेंटल स्टडी.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिजरटेशन. वीर नर्मद साउथ गुजरात यूनिवर्सिटी, सूरत.

मकवाना, वी.के. 2010. *डेवलेपमेंट ऑफ़ कंप्यूटर असिस्टेड लैंग्वेज लर्निंग पैकेज फ़ॉर इंस्ट्रक्शन ऑफ़ 'पार्ट्स ऑफ़ स्पीच' ऑफ़ इंग्लिश लैंग्वेज.* अनपब्लिशड डॉक्टरल डिज़रटेशन. सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी, राजकोट.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 2014. *एजुकेशन स्टैटिस्टिक एट ए ग्लांस*. ब्यूरो ऑफ़ प्लानिंग, मॉनिटरिंग एंड स्टैटिस्टिक्स, एम.एच.आर.डी. नयी दिल्ली.

———. 2014. हाइलाइट्स ऑफ़ न्यू टेकन बाय द मिनिस्ट्री ऑफ़ एम.एच.आर.डी. नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2007. *सेवंथ ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे — टीचर एंड दियर क्वालिफ़िकेशन.* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

यूनेस्को. 2002. *इंफ़ॉर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी इन टीचर एजुकेशन — ए प्लानिंग गाइड*.

सनसनवाल, डी. एन. 2009. *यूज़ ऑफ़ आई.सी.टी. इन टीचिंग-लर्निंग एंड इवैल्यूएशन*. सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

शाला-पूर्व शिक्षा में खेल की भूमिका

कृष्ण चन्द्र चौधरी*

खेल सभी बच्चों का नैसर्गिक अधिकार है। खेल वह क्रिया है, जिसमें आनंद, स्वतंत्रता एवं आत्म-प्रेरणा तीनों गुण मिलते हों। सभी बच्चों को अन्वेषण के लिए, हँसने व आनंद उठाने के लिए समय, जगह, अवसर और अकेले या दोस्तों के साथ खेलना ज़रूरी है। इसलिए खेल को प्रोत्साहित करना आवश्यक है, जिससे सभी बच्चों के विकास, शिक्षा और कल्याण में सहयोग कर सकते हैं। खेल के माध्यम से बच्चों के शारीरिक कौशल को विकसित करने एवं स्वस्थ रहने में सहायता मिलती है। खेल एक सुनियोजित, सुव्यवस्थित, योजनाबद्ध और स्वतंत्र गतिविधि है। खेल बच्चों को भावनात्मक रूप से मज़बूत बनने में सहायता करता है। खेल के माध्यम से माता-पिता (अभिभावक, संरक्षक) एवं मित्रों के साथ बच्चों की दोस्ती और मज़बूत रिश्ते बनाने में सहायता मिलती है। खेल बच्चों को ज्ञान बढ़ाने में, निर्णय लेने में एवं मानसिक कौशल विकसित करने में सहायता करता है। खेल के माध्यम से बच्चों में भाषा व संचार कौशल को विकसित करने में सहायता मिलती है। खेल बच्चों में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है।

बच्चों की दुनिया सर्वथा पृथक व अनोखी होती है और उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। यद्यपि, खेल सभी को प्रिय होने के साथ खुशी देते हैं। खेल के माध्यम से मिलने वाली चुनौती बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है। खेल-खेल में शिक्षा बोझरहित व मनोरंजक होती है। इससे बच्चों में आत्मविश्वास पैदा होता है और बच्चे स्वप्रेरित होते हैं। बच्चों के लिए खेल प्राकृतिक, सहज, आनंददायक एवं लाभप्रद होता है। बच्चे, खेल केवल खेलने के लिए खेलते हैं, खेल बच्चे की शारीरिक वृद्धि व मानसिक विकास का संकेत देते हैं। हाल ही के वर्षों में खेल को व्यवहारगत स्वभाव के रूप में स्वीकार किया गया है।

जीवन में खेल का विशेष महत्व

मानव जीवन में खेल का प्रमुख स्थान है। इसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है। खेल के द्वारा बच्चों को प्रभावी ढंग से शिक्षा दी जा सकती है। बच्चे खेल-खेल में काफ़ी कुछ सीख लेते हैं। खेल के द्वारा बच्चे की मांसपेशियों का व्यायाम होता है, मस्तिष्क का विकास होता है और वह अन्य बच्चों के साथ रहना सीखता

* *सहायक प्रोफ़ेसर*, मनोविज्ञान विभाग, एस. बी. कॉलेज, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, मौलाबाग, आरा, ज़िला भोजपुर (बिहार) 802301

Chapter 5.indd 50 10/1/2018 2:40:36 PM

है। बच्चे में खेल के माध्यम से आपसी बातचीत, तालमेल, अपनी बारी का इंतज़ार और धैर्य आदि का विकास होता है।

प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा के अंतर्गत बच्चों की देखभाल एवं सीखने को एक-दूसरे से संबद्ध किए जाने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। इन बच्चों के अभिभावक घर पर शिशु उद्दीपन क्रियाओं द्वारा उनमें विकास एवं सीखने की आधारशिला रख सकते हैं। शाला-पूर्व शिक्षा केंद्र में भी आवश्यक उद्दीपन क्रियाओं के आयोजन द्वारा सीखने को बढ़ावा दिया जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा कार्यक्रमों का उद्देश्य है कि बच्चे खेलकूद के माध्यम से खुद करके सीखें। इस पद्धति में बच्चे की आवश्यकताओं, रुचियों, क्षमताओं और सामाजिक संदर्भों को सम्मिलित किया जाता है।

बाल जीवन में शाला-पूर्व शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें बच्चों के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास की नींव रखी जाती है। फलत: शाला-पूर्व शिक्षा के अंतर्गत बच्चे की प्रारंभिक बाल्यावस्था में सामाजिक, भावनात्मक, सृजनात्मक, संज्ञानात्मक, रचनात्मक, शारीरिक, मानसिक तथा सौंदर्यबोध के विकास के लिए सहज, आनंदपूर्ण व उत्प्रेरक परिवेश देने और बाल विकास सुनिश्चित करने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रदान करना आवश्यक है। बच्चों के व्यक्तित्व का अधिकतम विकास इन्हीं वर्षों (3–6 आयु वर्ग) में होता है। बच्चे अपने जीवन के इस चरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया से गुज़रते हैं, जिसमें बौद्धिक प्रेरणा प्रदान करके वांछनीय अभिवृत्तियाँ विकसित करने में मदद मिलती है।

बच्चों के संपूर्ण विकास (क्रिया विधि, खोज, चिंतन, अवधारणा तथा अन्वेषण) के लिए खेलों की आधारभूत सुविधाएँ अनिवार्य रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। सभी बच्चों के लिए गुणात्मक शाला-पूर्व शिक्षा का प्रावधान सुनिश्चित करना चाहिए, जिसके फलस्वरूप बच्चों का सर्वांगीण विकास हो। शाला-पूर्व शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न आयामों के तहत बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए खेल-खेल में जानकारी प्रदान करना है।

बच्चे के सीखने की प्रक्रिया व मानसिक क्षमताएँ

बच्चों को सिखाने में परिवेश मुख्य भूमिका निभाता है। जन्म से छह वर्ष तक इसकी प्रभावशीलता और भी अधिक होती है। परिवेश से अभिप्राय उन भौतिक, सामाजिक, प्राकृतिक परिस्थितियों से है जो बच्चों के आस-पास उपलब्ध हैं। जहाँ बालक पलता-बढ़ता है, उसी परिवेश का अनुकरण कर सीखता है। सीखना बच्चे और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौतिक वातावरण के बीच पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप होता है। यह माना गया है कि दो तिहाई से ज़्यादा सीखना समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा संभव होता है। इसमें बच्चे का परिवार के सदस्यों के साथ, उसके भौतिक एवं प्राकृतिक वातावरण के साथ तथा परिवार से बाहर समुदाय के सदस्यों एवं अन्य

आयु समूह के मित्रों के साथ पारस्परिक क्रिया सम्मिलित है।

बाल विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें बच्चा गति, विचार, एहसास तथा अन्य व्यक्तियों के संपर्क में रहकर सीखता है। बच्चों के विकास के लिए ज़िम्मेदार लोगों, जैसे — देखभाल कर्ता, शिक्षक, अभिभावक और बच्चों के विकास में सहयोगियों को बाल विकास तथा सीखने की मूलभूत अवधारणाओं एवं विधियों से अवगत होना आवश्यक है।

तीन से छह आयु वर्ग के बच्चों के लिए कार्यक्रम और योजना बनाने की विधियाँ

बच्चों को खेल-खेल में सिखाने के लिए आमतौर पर दो तरह की कार्य योजना बनाई जाती है — विषय आधारित और विकास क्षेत्र आधारित।

- विषय आधारित (थीम बेस्ड) कार्य योजना बनाते समय किसी एक ही विषय पर आधारित गतिविधियों को केंद्रित कर एक निश्चित अवधि के लिए कार्य योजना बनाई जाती है। इसके पीछे अवधारणा यह है कि किसी बात को समझने के लिए दिमाग को बार-बार दोहराव की आवश्यकता होती है। यह दोहराव अलग-अलग तरीके से किए जाने से बच्चों को बोरियत नहीं होती तथा विषय की समझ अच्छे से विकसित हो जाती है। इस विधि में किसी विषय-वस्तु को जीवन के विभिन्न पक्षों एवं परिवेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है।
- विकास क्षेत्र आधारित कार्य योजना बनाते समय शारीरिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, भाषाई विकास, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के लिए अलग-अलग कार्य योजना बनाई जाती है।

सीखने के लिए सुरक्षित, सृजनात्मक एवं उपयुक्त वातावरण का निर्माण

शाला-पूर्व शिक्षा में छोटे बच्चों को सीखने के लिए विविध सामग्री को सम्मिलित किए जाने से बच्चों को अपनी रुचि तथा आवश्यकतानुसार सीखने में मदद मिलती है। कक्ष का भौतिक वातावरण और सजावट बच्चों को सीखने के लिए सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है। छोटी आयु में बच्चे प्रत्यक्ष वस्तुओं से सीधे संबंध से आसानी से सीखते हैं। बच्चे बड़ों का अनुकरण कर वस्तुओं के साथ फेरबदल कर, छान-बीन कर, प्रयोग कर ज्ञान हासिल करते हैं अर्थात् बच्चे विशेष तौर पर प्रायोगिक अनुभवों के द्वारा ही सीखते हैं। अत: हमें बच्चों के लिए खोज करने, अनुसंधान करने व सीखने के लिए सुरक्षित वातावरण प्रदान करना चाहिए।

आंतरिक (भीतरी) वातावरण — भीतरी वातावरण छोटे बच्चों की रुचियों व विकासात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। कक्षा-कक्ष की शैक्षिक साज-सज्जा के साथ यदि कक्षा में स्थान का अभाव न हो तो उनके खेलने के लिए कॉर्नर बनाए जाने चाहिए, जैसे — गुड़िया घर किनारा (कॉर्नर), विज्ञान व पर्यावरण प्रयोग किनारा आदि।

बाहरी वातावरण — बच्चों की मांसपेशियों के विकास के लिए मुख्य रूप से खेलकूद, भाग-दौड़

उछलना, चढ़ना-उतरना आदि शारीरिक गतिविधियाँ महत्वपूर्ण होती हैं। इसके लिए खुली जगह की आवश्यकता होती है। इसलिए ई.सी.सी.ई. केंद्रों पर बाहर का स्थान खुला होना अत्यंत आवश्यक है। प्रत्येक दिन में एक विशेष समय अंतराल बाहरी खेलों व गतिविधियों के लिए निर्धारित किया जाना चाहिए। सीखने के स्थान तथा सामग्रियों को विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार तैयार किया जाना आवश्यक है। बाहरी खेल के लिए भी अलग-अलग कॉर्नर बनाए जाने चाहिए, जैसे — बालू किनारा, मिट्टी के खिलौने बनाने, झूले, संतुलन के खेल, फिसल-पट्टी के लिए किनारा आदि।

बच्चों के लिए खेलों के प्रकार

स्वतंत्र खेल — इसमें बच्चे बिना किसी विशेष निर्देश के अपने आप खेलते हैं। बच्चों को बाह्य खेलों में स्वतंत्र रूप से खेलने का पर्याप्त अवसर मिलना आवश्यक है, जिससे वे एक-दूसरे से वार्तालाप व दोस्त बना सकें। बच्चों को स्वतंत्र रूप से खेलने के अवसर दिए जाने से बच्चों की व्यक्तिगत पसंद को भी निर्धारित करने में मदद मिलती है। कुछ अवसर बच्चों को विकल्प चुनने में मदद करते हैं। इससे बच्चों में समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने की कुशलता विकसित होती है।

मुक्त व संरचनात्मक खेल — जब बच्चा मिट्टी के साथ किसी वयस्क के हस्तक्षेप और निर्देशन के बिना ही खेल रहा हो, तब इसे मुक्त खेल कहते हैं। मुक्त खेल जिज्ञासा एवं पहल को बनाए रखता है और बच्चों को खोज करने के लिए प्रोत्साहित करता है। संरचनात्मक खेल में पालनकर्ता बच्चे का ध्यान कुछ विशेष पहलुओं की ओर आकर्षित करता है। इस प्रकार संरचनात्मक खेल विशेष लक्ष्य की प्राप्ति में मदद करता है।

परीक्षणात्मक खेल — इन खेलों में, जैसे कि इनके नाम से स्पष्ट है, बच्चे चीज़ों को उलटते-पलटते व तोड़ते-फोड़ते देखे जाते हैं। इस तरह वे वस्तुओं का परीक्षण करते हैं।

विधानक खेल — वस्तुओं से खेलना, बच्चा रचनात्मक खेल खेलता है और कुछ नया बनाता है।

बौद्धिक खेल — इन खेलों में, बच्चे शब्द निर्माण व पहेलियाँ हल करते हैं।

निर्देशित खेल — इसमें बच्चों को कुछ निर्देशों के अनुसार खेलने को कहा जाता है यानि कि विशेष निर्देश के साथ खेलना।

क्रियात्मक खेल — इसमें बच्चे ज्ञानेंद्रियों तथा मांसपेशियों का प्रयोग कर वस्तुओं को खोजते हुए प्रयोग करके सीखते हैं। इससे कहाँ-कैसे की जिज्ञासा शांत होती है। क्रियात्मक खेल बच्चों को सक्रिय रहने और खोजबीन करने के अवसर प्रदान करते हैं।

रचनात्मक खेल — इसमें बच्चे विभिन्न वस्तुओं का उपयोग कर सीखते हैं, योजनात्मक ढंग से वस्तुओं को एक साथ रखते हैं, लक्ष्यों को पाने के लिए रणनीतियाँ बनाते हैं।

सृजनात्मक खेल — इसमें कल्पना-सोच एवं निर्णय के साथ सामग्री का प्रयोग करते हुए कुछ नयी खेल की रचना करना।

बाहरी और भीतरी खेल— खुले मैदान में खेले जाने वाले खेल बाहरी खेल और घर में खेले जाने वाले खेल भीतरी खेल कहलाते हैं। घर के बाहर खेले जाने वाले खेलों में क्रियाओं के अवसर मिलते हैं, क्योंकि यहाँ स्थान अधिक और बाधाएँ कम होती हैं। घर के अंदर खेले जाने वाले खेलों के लिए स्थान सीमित होता है और गतिविधियों की स्वतंत्रता अपेक्षाकृत कम होती है। वैसे तो बाहरी और भीतरी खेलों में भिन्नता बहुत कम होती है। कई भीतरी खेल बाहर खेले जा सकते हैं और बाहरी खेल भी थोड़े से परिवर्तन के साथ अंदर खेले जा सकते हैं।

नाटक (नकल) करने वाले खेल— इसमें बच्चे दूसरों की नकल करते हैं। नकली वस्तुओं का प्रयोग करके नाटक करने में आनंद का अनुभव करते हैं। बच्चे जो भी अनुभव करते हैं, जो भी देखते हैं, नाटक या नकल में उन्हीं शब्दों का उच्चारण, हाव-भाव प्रदर्शित करते हैं और वे भूमिका प्रदर्शित करते हैं, जिसकी वह भूमिका निभाते हैं।

एकाकी खेल— कहानी, कविता, नाटक, समूह गीत देखने या सुनने के बाद बच्चों के मन में बहुत-से विचार आते हैं, उनके मन में कई कल्पनाएँ उड़ान लेने लगती हैं। उनके चिंतन को बढ़ावा देने के लिए बच्चों को कुछ समय के लिए स्वतंत्र खेलने के लिए छोड़ देना चाहिए। बच्चे स्वेच्छा से अकेले कुछ खेल खेलना चाहते हैं, जिसमें वे किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहते। अपने आप में बड़बड़ाते रहते हैं और खेलते रहते हैं, इससे उनके अंदर एकाग्रता का विकास होता है। उन्हें अपने अंदर छिपी हुई प्रतिभाओं को उभारने के अवसर मिलते हैं। बच्चे को समूह में की गई गतिविधियों को अपने आप के साथ दोहराने के अवसर मिलते हैं, जिससे वे उनकी स्मृति में स्थायी रूप से बस जाता है। बच्चों को अलग-अलग खेलने के लिए बिल्डिंग ब्लॉक्स आदि जैसी जोड़ने-तोड़ने वाली खेल सामग्री भी उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।

नियमबद्ध खेल— सामूहिक खेल बच्चों को अपने व्यवहार को नियंत्रित करना, नियमों का पालन, अपनी बारी का इंतज़ार करना, पूर्व निर्धारित नियमों का पालन सिखाते हैं। इन खेलों का उद्देश्य खेल में प्रतिस्पर्धा का भाव या हार-जीत न होकर आनंद की प्राप्ति है।

गतिशील खेल— इन खेलों में बच्चे दौड़ना, छुपना, उछलना, कूदना आदि विभिन्न अंगों से गति के साथ खेलते हैं।

ओजस्वी एवं शांत खेल— बच्चे भागने, कूदने व उछलने वाले खेल खेलना पसंद करते हैं अर्थात् वह खेल जिसमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, ऐसी खेल क्रियाएँ ओजस्वी (सक्रिय) खेल क्रियाएँ कहलाती हैं। वे खेल जिनमें अधिक शारीरिक क्रिया की आवश्यकता न हो, जैसे— ज़मीन पर चॉक से लिखना, चित्र बनाना, मिट्टी से खिलौने बनाना व पत्थरों से मीनार बनाना, बच्चों को आराम देती हैं। ऐसे खेल, जिनमें अधिक ऊर्जा व्यय नहीं होती, शांत खेल कहलाते हैं।

वैयक्तिक एवं सामूहिक खेल— जब बच्चे स्वयं और अकेले खेलते हैं तो यह वैयक्तिक खेल कहलाता है। जब वह दो या दो से अधिक बच्चों के साथ खेलते हैं तो वह सामूहिक खेल कहलाता है। समूह में खेलने के लिए आवश्यक है कि बच्चे

दूसरों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखें और खेल के नियमों का पालन करें। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, ये योग्यताएँ उम्र के साथ विकसित होती हैं। तीन-चार साल की उम्र तक बच्चे प्राय: अकेले ही खेलते हैं। अन्य बच्चों के साथ वे केवल थोड़े समय के लिए ही खेलते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, वे दूसरों के साथ खेलना सीखते हैं और फिर उनके खेलने का अधिकांश समय समूह में खेलकर गुज़ारते हैं। परंतु समय-समय पर बड़े बच्चे भी अकेले खेलना पसंद करते हैं। जहाँ समूह में खेलने से सामाजिक कौशल (समाजीकरण) का विकास होता है, वहीं वैयक्तिक खेल बच्चों को उन वस्तुओं से खेलने का समय देता है जो उन्हें सबसे रुचिकर लगती हैं। दोनों ही खेल बच्चे के कौशल विकास में सहायक होते हैं।

संपूर्ण बाल विकास की रूपरेखा

बच्चों के सामाजिक, भावनात्मक, शारीरिक, भाषाई कौशलों, बौद्धिक, सृजनात्मक अभिव्यक्ति, सौंदर्यानुभूति एवं खेल गतिविधियों के विकास से प्रारंभिक बाल्यावस्था में शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन हो पाएगा। खेल बच्चों के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकता है। बच्चे खेल-खेल में काफ़ी कुछ सीख लेते हैं। इसके तहत खेल-खेल में प्राणियों की चालों को चलकर और भारी या हलकी आवाज़ को निकालकर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाएँ बच्चों से कराएँ। खेल बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उसे जीवन की भावी महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए तैयार करते हैं। इस तरह आने वाले समय में बच्चों में निश्चित ही आत्मविश्वास

खेल-खेल में शाला-पूर्व शिक्षा की गतिविधियाँ

बड़े समूह की गतिविधियाँ	गीत, कविता, कहानी, नाटक, नकल, वार्तालाप, समूह खेल, त्योहार, जन्मदिन, महत्वपूर्ण दिवस, समूह गीत आदि
स्वतंत्र खेल	बच्चे स्वेच्छा से जो खेलना चाहें, खेल सकते हैं, जैसे — अँगुली के खेल, कार्यात्मक गीत, फाड़ना, मेनीपुलेटिव (जोड़ने-तोड़ने वाली) सामग्री का प्रयोग करना, पेंटिंग, ड्रॉइंग आदि
छोटे समूह की गतिविधियाँ	पहचानना, मिलाना, छाँटना, वर्गीकरण (बाँटना), क्रम से लगाना, क्रम देना, पानी के खेल, नाटक, बागवानी, बिल्डिंग ब्लॉक्स से खेलना, निर्माण करना, घर-घर खेलना, सुनना, सूँघना, चखना, देखना, महसूस करना आदि
भाषा व साक्षरता पूर्व कौशल	कहानी, कविता, संवाद, अनौपचारिक बातचीत, किताबें, पिक्चर चार्ट, खेल, कठपुतली, शब्द भंडार, ध्वनि खेल, पहेलियाँ, लिखो और बोलो आदि
रचनात्मक गतिविधियाँ	संगीत, लय और ताल के साथ नृत्य, नाटक, कोलाज कार्य, मिट्टी के खिलौने, जानवरों और बगीचे की देखभाल आदि
बाहरी खेल	चलना, दौड़ना, संतुलन बनाना, कूदना, ठोकर मारना, धक्का देना, खींचना, फैलाना, सरकना, रस्सी पर चलना, लुढ़कना, तैरना, पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिए पौधारोपण, बागवानी, साईक्लिंग, प्राकृतिक भ्रमण, क्षेत्रीय भ्रमण, पानी के खेल, बालू के खेल आदि

का संचार होगा और वह भावनात्मक, नियंत्रण व संतुलन कायम कर सकेंगे।

संक्षेप में, मानव शिशु इस धरती पर सबसे तीव्र गति से सीखने वाला प्राणी है। बच्चे के जीवन के आरंभिक वर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं; क्योंकि इसी अवधि में गतिशीलता, संवेदना, संज्ञानात्मक, भाषाई, सामाजिक और व्यक्तित्व के विकास की नींव रखी जाती है। शाला-पूर्व शिक्षा में बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण और चहुँमुखी विकास को ही बुनियादी तौर पर लक्ष्य माना जाता है। इस तरह बच्चों को स्वस्थ व सकारात्मक माहौल में खेल-खेल में सिखाया-पढ़ाया जा सकता है। शाला-पूर्व (प्रारंभिक बाल्यावस्था) शिक्षा बच्चों के विकास के लिए है; इसलिए उन्हें केंद्र में रखकर खेलों के माध्यम से आधारभूत पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और ज्ञान की पूर्ति करनी चाहिए।

संदर्भ

एन.सी.टी.ई. 2009. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फ़ॉर टीचर एजुकेशन — टुवर्डस प्रिपेयरिंग प्रोफ़ेशनल एंड ह्यूमन टीचर* – 2009. नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली.

कौल,वी. 2010. *अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन प्रोग्राम*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

प्रसन्न, के. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 — एक विमर्श*. योजना, नयी दिल्ली.

बर्क. ई. ल्यूरा. 2006. *चाइल्ड डिवेलपमेंट*. (सातवाँ संस्करण). पियरसन प्रिटिंस हॉल, दिल्ली.

———. 2003. *चाइल्ड डिवेलपमेंट*. पियरसन एजुकेशन. नयी दिल्ली.

———. 2007. *डिवेलपमेंट थ्रू द लाइफ़स्पैन*. पियरसन एजुकेशन, दिल्ली.

भटनागर, आर. 2005. *लिटिल स्टेप्स*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

भारत सरकार. 2007. *नेशनल नॉलिज कमीशन रिपोर्ट – 2007*. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

भारत सरकार 2012. *शाला-पूर्व शिक्षा पाठ्यक्रम रूपरेखा — 2012*. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

रंगनाथन, एन. 2000. *दी प्राइमरी स्कूल चाइल्ड — डिवेलपमेंट एंड एजुकेशन*. ओरियंट लॉगमैन, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा —2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

———. 2006. *पोज़िशन पेपर ऑन अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन*. नेशनल फ़ोकस ग्रुप. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

रूबेलो, बिरटो.पी और लिमिलगन. एम.सी., 2012. *स्कूल रेडीनेस एंड ट्रांज़िशंस*. यूनीसेफ़, यू.एस.ए., न्यूयॉर्क.

संट्रोक, जॉन, डब्ल्यू. 2008. *ए टॉपिकल अप्रोच टू लाइफ़स्पैन डिवेलपमेंट*. (तीसरा संस्करण). टाटा मैग्राहिल, नयी दिल्ली.

स्वामीनाथन, एम. 1987. *बच्चों के लिए खेल-क्रियाएँ*. यूनिसेफ़, नयी दिल्ली.

स्वामीनाथन, एम. और डेनियल, पी. 2004. *प्ले एक्टीविटीज़ फ़ॉर चाइल्ड डिवेलपमेंट — ए गाईड टू प्री.स्कूल टीचर्स*. नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.

भारत में बहुभाषिकता तथा हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ एवं समाधान

रश्मि श्रीवास्तव*

भाषा शिक्षा अन्य विषयों गणित, विज्ञान आदि की तरह सीखने-सिखाने की एक प्रक्रिया मात्र नहीं है। यहाँ तो एक-एक शब्द, शब्दों की व्याख्याएँ, उनकी अभिव्यंजनाएँ दिलों से, सोचने समझने के तरीकों से, हमारे मस्तिष्क की गाँठो से अंतर्मन तक की पहुँच का एक माध्यम भी हैं। थोड़े और विस्तृत रूप में भाषाएँ हमारा स्वाभिमान बन हमारी जड़ों की मज़बूती बन जाती हैं। किसी भी राष्ट्र के बेहतरीन साहित्य वहाँ लिखी जाने वाली कथा, कहानियाँ, मीठी कविताएँ उनकी अपनी खुद की भाषाओं में हुआ करते हैं। हमें भी अपनी कक्षाओं के भीतर हिंदी भाषा-शिक्षण के माध्यम से एक ऐसा माहौल बनाना होगा, जिसमें कक्षा में बैठे छोटे-बड़े बच्चों का हृदय अपनी इस राजभाषा के प्रति गौरव से भर सके। उनके दिलों में उतरा गौरव उनकी कॉपी-किताबों में सुंदर अक्षरों की छाप बने और ये सुंदर अक्षर उनके दिलों में आकार लें, उनके विचारों को, उनके द्वारा सीखे गए ज्ञान को, उनकी खुद की भाषा (हिंदी) में मुखरित कर सकें। ज्ञान-विज्ञान के पारंपरिक और आधुनिक, दोनों शाखाओं में हिंदी भाषा सहज संवाद, सहज क्रियाशीलता का आधार बन सके। इस पूरे क्रम में ध्यान इस बात का भी रखना होगा कि विविध क्षेत्रीय भाषाओं की अनदेखी न हो। अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी का भी अपना महत्व है। हमारी कक्षाओं को इतना उदार तो होना ही होगा कि वह कक्षा में, विद्यार्थी के घरों, आस-पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा को स्वीकार करें। इस भाषा के माध्यम से ही हिंदी भाषा को उन्नत करना होगा। आकाश के खुले विस्तार में संग साथ उड़ने का आनंद अलग तरह का है। इसकी ताकत भी विशिष्ट है। बहुभाषा-भाषी भारत देश में हिंदी शिक्षण को प्रभावशाली बनाने का यही मूल आधार है। इन्हीं सभी सरोकारों का ध्यान रखते हुए हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियों एवं उनके व्यावहारिक समाधान का उल्लेख इस लेख में किया गया है।

भारत देश विभिन्नताओं का देश है। यह विभिन्नता भौगोलिक होने के साथ-साथ भाषाई तथा सांस्कृतिक भी है। भाषाई विविधता के नज़रिये से भारत एक अनोखा देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ बोली और समझी जाती हैं। समाजशास्त्री दृष्टि से भाषा समाज द्वारा विकसित विचारों का आदान-प्रदान का साधन है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समूह में रहना पसंद करता है। यही समूह जाति व समाज के रूप में आकार लेते हैं। विकास के इस क्रम में प्रत्येक समूह भाषा का आश्रय लेता है। भाषा के माध्यम

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (बी.एड.) महिला विद्यालय पी.जी. कॉलेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश 208011

से ही वे आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अतः समाज के विकास के साथ भाषा का भी विकास होता चला जाता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि भाषा का विकास सामाजिक विकास का द्योतक है। एक समाज जितना सभ्य व प्रगतिशील होगा, उसकी भाषा भी उतनी ही संपन्न होगी। हमारे देश की भाषाई विविधता समृद्धता का प्रतीक है। देश भर में बोली जाने वाली विविध भाषाओं की अपनी-अपनी महत्ता है, उनका अपना विशिष्ट शब्द भंडार व साहित्य है, लेकिन संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा देते हुए देश भर में इसके पठन-पाठन की व्यवस्था पर ज़ोर दिया गया है। किंतु अनेक सामाजिक, राजनीतिक कारणों से राजभाषा हिंदी को व्यावहारिक रूप में उसका वास्तविक दर्जा न मिल पाने के कारण इसका नकारात्मक प्रभाव हिंदी भाषा के पठन-पाठन पर भी पड़ा है। आज देश के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में हिंदी भाषा शिक्षा तमाम चुनौतियों से जूझ रही है। भाषाई विषमता व बहुभाषिकता ने हमारी आज की ताकत बनने के बजाए, भाषाई समस्या को जन्म दिया है। आइए, भारत में बहुभाषिकता तथा हिंदी भाषा शिक्षा की चुनौतियों के संदर्भ में सबसे पहले नज़र डालें बहुभाषिकता के आशय तथा भारत में उसकी स्थिति पर।

बहुभाषिकता

बहुभाषिकता का शाब्दिक अर्थ अनेक भाषाओं का जानकार होना है। किसी देश में बहुभाषिकता उस राष्ट्र में विविध भाषाओं के प्रयुक्त होने की स्थिति है। किसी राष्ट्र अथवा समाज में यदि विविध भाषाएँ बोली, समझी और लिखी-पढ़ी जाती हैं तो वह राष्ट्र बहुभाषी है। बहुभाषी देश अपनी स्थानीय ज़रूरतों के लिए अगर एक भाषा का प्रयोग करता है तो इन ज़रूरतों से ऊपर क्षेत्रीय स्तर की आवश्यकताओं के लिए एक दूसरी भाषा का। इनका आपसी तालमेल बहुभाषिकता की खूबसूरती है। भारत एक बहुभाषी देश है। 1961 की जनगणना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस देश मे 1652 मातृभाषाएँ हैं जिनको 200 वर्गीकृत भाषाओं में बाँटा जा सकता है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार देश में 22 प्रमुख भाषाएँ हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 के अंतर्गत पहले केवल 15 भाषाओं को राजभाषा/आधिकारिक भाषा की मान्यता दी गई थी। 21वें संविधान संशोधन द्वारा सिंधी को तथा 71वें संविधान संशोधन द्वारा नेपाली, कोंकणी तथा मणिपुरी को भी राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। बाद में 92वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में चार नई भाषाओं— बोडो, डोगरी, मैथिली तथा संथाली को राजभाषा में शामिल कर लिया गया। यहाँ विशेष बात यह है कि शत-प्रतिशत साक्षरता के लक्ष्य से दूर होने तथा भाषा शिक्षण की किसी निश्चित योजना के कार्यान्वयन के अभाव में भी बहुभाषिकता का स्वरूप भारत में ज्यों का त्यों बना हुआ है एवं फलफूल रहा है। ईमानदारी से देखें तो बहुभाषिकता वैश्वीकरण के वर्तमान युग में एक ज़रूरत भी है। जिस तरह निकट राज्यों के निवासी

आस-पास के सीमा क्षेत्र में निकट राज्यों में निवास करने वाले लोगों से उनकी भाषा से तालमेल बिठा, संवाद स्थापित करते हैं, उसी प्रकार दो देशों की जनता भी सीमा क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के सहारे उस देश के लोगों के साथ संवाद कर सकती है। व्यवहार में प्रायः ऐसा देखा भी गया है कि एक प्रदेश के सीमा क्षेत्र से प्रसारित हो उस क्षेत्र के समीप राज्य तक एक-दूसरे की भाषा प्रसारित होती है। राष्ट्रों के सीमावर्ती क्षेत्रों से भाषा का प्रचार भी स्वतः होता है। उदाहरणस्वरूप नेपाल की सीमा के साथ रहने वाले अपनी मातृभाषा के साथ नेपाली भाषा, चीन और रूस की सीमा के साथ रहने वाले लोग चीनी और रूसी भाषाओं में संवाद की क्षमता थोड़ी बहुत रखते हैं।

बहुभाषिकता की दृष्टि से भारत संभवतः विश्व में सर्वाधिक विविधताओं वाला देश है। हज़ारों मातृभाषाएँ यहाँ हज़ारों साल से बोली जाती रही हैं। भिन्न भाषा-भाषियों के बीच परस्पर संवाद के लिए अलग-अलग स्तरों पर कोई-न-कोई भाषा संपर्क भाषा की ज़िम्मेदारी निभाती दिखाई देती है। बहुभाषिक समाज में किसी भी भाषा का संप्रेषण घनत्व सर्वत्र एक जैसा नहीं होता, बल्कि एक भाषा क्षेत्र से दूसरे भाषा क्षेत्र के संपर्क में आने पर वह बदलता भी है।

राजभाषा हिंदी

बहुभाषिकता के गौरव से सजे भारत देश की एक प्रधान ज़रूरत एक ऐसी भाषा की है जो देश भर की स्वीकार्य भाषा हो और जिसे पूरा देश अपना मानकर अंगीकृत कर सके। यहाँ हमें ध्यान देना होगा कि जिस प्रकार विभिन्न राज्यों को भारत संघ के एक सदस्य के रूप में जुड़कर स्वायत्त बनने का अधिकार है, उसी प्रकार भाषाई संप्रेषण व्यवस्था में, विभिन्न भाषाएँ अखिल भारतीय स्तर पर जुड़ कर अपनी क्षेत्रीय सत्ता सिद्ध कर सकेंगी। अंग्रेज़ी तथा भारत में बोली जाने वाली अन्य प्रादेशिक भाषाओं में हिंदी भाषा सर्वाधिक प्रयोजन सिद्ध भाषा है। अतः संघीय भाषा के रूप में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया जाना भारत में भाषाई समृद्धता के नज़रिये से लाभप्रद है।

भारत का इतिहास गवाह है कि जब भी जनजागरण आंदोलन छिड़ा या किसी भी धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक लोकनायक ने संपूर्ण देश को एक साथ संबोधित करना चाहा, तब-तब उन आंदोलनों और लोकनायकों ने उस काल की संपर्क भाषा को अपनाया। स्वतंत्रता आंदोलनों में भी यह स्थिति देखी गई। इस अवधि में हिंदी को व्यापक जनसंपर्क के लिए सर्वाधिक समर्थ भाषा के रूप में पाया और स्वीकृत किया गया। हिंदी भाषा की ये ताकत आज भी ज्यों की त्यों है। खेद का विषय है कि विविध राजनीतिक कारणों तथा अंग्रेज़ी भाषा के व्यापक प्रभाव में हमारी शिक्षण संस्थाओं और शैक्षिक व्यवस्थाओं में हिंदी भाषा को हीनता से देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई है। हीनता का यह भाव शैक्षिक संस्थाओं में गौरव से हिंदी को प्रमुखता दे ही नहीं पाता। यहाँ ध्यान से देखें, जहाँ भाव ही न हो, वहाँ समर्पण कहाँ, उत्कर्ष कहाँ?

भारतीय संविधान में हिंदी भाषा के विकास और विस्तार के संदर्भ में जो लक्ष्य निर्धारित हैं, वह

हिंदी भाषा का वह स्वरूप है, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं और संस्कृत की शब्दावली, शैली और रूप समाहित हो। संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार हिंदी देवनागरी लिपि में संघ की राजभाषा होगी। अनुच्छेद 343 (2) में शासकीय कार्य में अंग्रेज़ी के प्रयोग को संविधान के लागू होने के बाद से 15 वर्ष यानी 25 जनवरी, 1965 तक जारी रखने का प्रावधान किया गया था। अनुच्छेद 343 (3) में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह कानून बनाकर सरकारी कार्यों के लिए अंग्रेज़ी के निरंतर प्रयोग को 25 जनवरी, 1965 के बाद जारी रख सके। तदनुसार राजभाषा अधिनियम 1963 (1967 में संशोधित) की धारा 3 (2) में यह व्यवस्था की गई है कि हिंदी के अलावा अंग्रेज़ी भाषा सरकारी कामकाज के लिए 25 जनवरी, 1965 के बाद भी जारी रहेगी।

इन व्यवस्थाओं के तहत विशेष कार्यों, जैसे — प्रस्ताव, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचना, प्रेस विज्ञप्तियाँ, शासकीय और अन्य रिपोर्ट, लाइसेंस परमिट, ठेका आदि में हिंदी और अंग्रेज़ी, दोनों का उपयोग अनिवार्य है। इस पूरी व्यवस्था में राजभाषा हिंदी की केंद्रीय भूमिका और अंग्रेज़ी भाषा की सहायक भूमिका की परिकल्पना निहित है। लेकिन पूरे भारतवर्ष में हिंदी भाषा का संपर्क भाषा के रूप में प्रभावपूर्ण दर्जा होने के बावजूद शिक्षा व सरकारी कामकाज आदि के क्षेत्र में अंग्रेज़ी भाषा अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। देश भर में भारी संख्या में अंग्रेज़ी माध्यम के छोटे-बड़े विद्यालयों की बाढ़-सी आ गई है, जहाँ बच्चे न तो बेहतर अंग्रेज़ी सीख पाते हैं, न बेहतरीन हिंदी। हाँ, हिंदी भाषा के प्रति हीनभावना छोटी उम्र में ही उनके भीतर ज़रूर भर दी जाती है।

भारत में बहुभाषिकता तथा हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ

हम जानते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की गई संवैधानिक व्यवस्थाओं में देश में बोली जाने वाली विविध भाषाओं के संरक्षण व संवर्धन का भाव निहित है। हाँ, इन सबके बीच हिंदी राजभाषा के रूप में संपूर्ण देश को भाषाई नज़रिये से एक सूत्र में पिरोये रखे, इस बात की व्यवस्था रखी गई है। इन व्यवस्थाओं ने देश भर में हिंदी भाषा के प्रचार इसके पठन-पाठन की व्यवस्थाओं को एक ज़रूरत बना दिया है। जिसने बहुभाषा-भाषी भारत देश में शिक्षा के क्षेत्र में तमाम चुनौतियाँ पैदा की हैं। राजभाषा हिंदी को देश के जन-जन तक पहुँचाना एक चुनौती तो है ही, शिक्षा संस्थाओं में हिंदी भाषा का पठन-पाठन, पाठयक्रम में उसका स्वरूप तथा अहिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों में उसका शिक्षण अपने आप में एक बड़ा काम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति — 1968 में भाषा शिक्षा के संबंध में स्वीकृत त्रिभाषा सूत्र की विद्यालयी परिधि में अपनी नवीन चुनौतियाँ हैं। इस व्यवस्था में हिंदी भाषी राज्यों में अन्य किसी भारतीय भाषा का अध्ययन व्यर्थ बोझ के रूप में देखा जा रहा है तो अहिंदी राज्यों में राजभाषा हिंदी के अध्ययन को अनिवार्य करना भेदभावपूर्ण कृत्य के रूप में। संक्षेप में, विद्यालय के भीतर हिंदी भाषा के पठन-पाठन में प्रमुख चुनौतियाँ निम्न हैं —

- भारत में प्रायः बहुभाषिकता को एक संसाधन के रूप में देखने के बजाए एक समस्या की तरह देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि कक्षा में अलग-अलग भाषाओं के इस्तेमाल से बच्चों को उलझन होती है। जबकि स्थिति इसके ठीक विपरीत है। कक्षा में बहुभाषी माहौल बच्चों को अपनी बात रखने में सहजता देता है। ऐसा माहौल सभी बच्चों को दूसरे की भाषा और विचारों का सम्मान करना सिखाता है। अगर कोई बच्चा कक्षा में दूसरे बच्चों से अलग परिवेश का है, उसके घर में बोली जाने वाली भाषा कक्षा के अन्य बच्चों से अलग है तो कक्षा में उसे उसकी भाषा में बात कहने का पूरा अवसर दिया जाए तो वह अधिक सहज होगा। यहाँ करना यह होगा कि उसके द्वारा बताई गई बात को दूसरी भाषा में कैसे कहें, इस बात के लिए प्रेरित किया जाए और खुद उसकी कही बात में नये शब्दों को छाँटकर कक्षा के अन्य बच्चों को सुनने, समझने और उसके प्रति सहज भाव रखने के लिए प्रेरित किया जाए।
- वैश्वीकरण ने एक-दूसरे की भाषा को जानने समझने की उत्सुकता को बढ़ाया है। ऐसा देखा जा रहा है कि विश्व के विभिन्न देश अपनी राजभाषा के अलावा फ्रेंच, स्पैनिश, जर्मन, लैटिन, चीनी, कोरियाई आदि भाषाएँ सीख रहे हैं। विश्व भर में हिंदी भाषा सीखने के प्रति भी रुझान बढ़ा है। ऐसी दशा में भारत में बहुभाषिकता को उसकी ताकत के रूप में देखा जाना चाहिए। परिवार, स्थानीय समुदाय, क्षेत्रीय जन व्यवहार, साक्षरता और सामान्य तथा उच्च शिक्षा इन विभिन्न संदर्भों में भारत में भाषा का विश्लेषण एक जटिलता ज़रूर प्रदर्शित करता है। किंतु भारतीय समाज इसे बड़ी सहजता से ग्रहण करता रहा है। जिस प्रकार एक गाँव की बोली अपने सीमावर्ती दूसरे गाँव की बोली से अलग होकर भी दूसरे समुदाय में बोधगम्य रही है और जिस प्रकार आस-पास के गाँव आपसी व्यवहार के लिए उस बोली को बगैर किसी अहम् के स्वीकार करते रहे हैं, उससे बगैर किसी विवाद के बहुभाषिकता प्रसार लेती रही है। हाँ, हमारे विद्यालयों में सबकुछ इतना सामान्य हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। भारत देश की शिक्षण संस्थाएँ बहुभाषिकता को बहुत सहजता से स्वीकार नहीं कर सकी हैं। परिणामस्वरूप राजभाषा हिंदी के साथ विविध प्रांतीय भाषाओं का बहुत बेहतर समायोजन दिखाई नहीं देता और हिंदी भाषा तमाम चुनौतियों का सामना करने को विवश है।
- मातृभाषा तथा शिक्षा के माध्यम भाषा में भिन्नता की चुनौती, भारत में हिंदी भाषा शिक्षण की बड़ी चुनौती है। भाषा किसी देश की अपनी पहचान है, इसका विकास और विस्तार क्रमिक रूप में एक लंबी अवधि में धीरे-धीरे होता है, तो यहाँ रातो-रात नयी भाषा के साथ तादात्म्य आसान नहीं है। ऐसा देखा गया है कि जन्म के साथ बालक जिस भाषा को सुनता है, जिस भाषा में उसके आस-पास बातचीत की जाती है, उससे उसका एक प्रकार का भावनात्मक जुड़ाव होता है। महात्मा गाँधी ने कहा भी था,

"मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों ना हों, मैं उससे उसी तरह चिपका रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से, वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है।" यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर के कथन पर भी नज़र डालें, "सौभाग्य से मेरे ज्येष्ठ भ्राता का यह दृढ़ मत था कि बालक को विदेशी माध्यम से शिक्षा नहीं मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा भी था कि मातृभाषा में यदि शिक्षा की धारा प्रशस्त ना हो तो इस विद्याहीन देश में मरूवासी मन का क्या होगा? इस वास्ते जब तक मैं बड़ा नहीं हो गया और बंगला साहित्य में खूब दक्ष ना हो गया, मेरा अंग्रेज़ी पढ़ना शुरू नहीं हुआ। मेरी प्रारंभिक शिक्षा मुझे देशी भाषा में ही दी गई। अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने से पहले मुझे बंगला साहित्य की पुस्तकें पढ़ने और समझने का अवसर मिला। अपने आप के अनुभव से मैं भली-भाँति जानता हूँ कि मेरे संवर्धन और मानसिक विकास में इसका कितना योगदान है।" श्री अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द गिजूभाई बधेका, सर्वपल्ली राधाकृष्णन और दौलत सिंह कोठरी आदि ने मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने की वकालत की। स्पष्ट है कि विद्यालयों में एक विद्यार्थी की मातृभाषा की अनदेखी उचित नहीं है। भारत में हिंदी भाषा राजभाषा होने के बावजूद देश के विविध प्रांतों की मातृभाषा नहीं है, ऐसी स्थिति में अहिंदी भाषा-भाषी राज्य अपनी मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा को बढ़ावा देते हैं। अंग्रेज़ी का अंतर्राष्ट्रीय दर्जा, अंग्रेज़ी को विद्यालयों में बनाए रखने के लिए आकर्षित करता है। अतः देश के विविध प्रांतों में हिंदी भाषा शिक्षण का स्वरूप अपने आप में एक चुनौती है। इस दिशा में विद्यालयों में त्रिभाषा-सूत्र की व्यवस्था लागू की गई है, किंतु हिंदी भाषा का पठन-पाठन अहिंदी भाषा-भाषी राज्यों में उपेक्षित हुआ है। यह उपेक्षा हिंदी भाषा शिक्षण की बड़ी चुनौती है।

- हिंदी भाषी राज्य अंग्रेज़ी के मोह से उबर पाए हों, ऐसा दिखाई नहीं देता। इन राज्यों में अंग्रेज़ी माध्यम के निजी विद्यालयों की भरमार है। जिससे हिंदी भाषा का पठन-पाठन भी प्रभावित हुआ है। विद्यालयों में हिंदी भाषा के प्रति सकारात्मक माहौल हो, ऐसा भी दिखाई नहीं देता। उत्तर प्रदेश के निजी स्कूलों में आम-चलन है कि विद्यालय में अंग्रेज़ी के सिवा किसी अन्य भाषा में बात किए जाने पर फ़ाइन लिया जाए। अभिभावक से शिकायत की जाए। अर्थात् विद्यालयी परिधि में अंग्रेज़ी के सिवा किसी अन्य भाषा का प्रयोग दंडनीय है। आप देखें, यहाँ अंग्रेज़ी भाषा सिखाए जाने के साथ बच्चे ने अन्य दूसरी भाषा के कमतर होने, उसके हीन होने का भाव भी ग्रहण किया है। यह ठीक नहीं है। बहुभाषा-भाषी हमारे देश के विद्यालय यदि किसी एक भाषा को श्रेष्ठ व अन्य के निम्न होने का भाव बच्चों में विकसित करने लगे, तो स्थिति बिगड़ेगी ही। बेहतर है कि हमारे विद्यालय, हमारे बच्चों को अंग्रेज़ी भाषा का बेहतर ज्ञान दें, लेकिन राजभाषा हिंदी के प्रति किसी प्रकार का हीन भाव उनमें विकसित ना

करें। वे अंग्रेज़ी भाषा में बच्चों को सहज बनाएँ, लेकिन हिंदी भाषा की सहजता को बाधित ना करें। राजभाषा हिंदी के प्रति विद्यार्थियों को सहज बनाएँ रखना हमारी कक्षाओं की एक बड़ी चुनौती है।

- हिंदी भाषा भारत में ही नहीं, संपूर्ण विश्व में भी प्रभावी हुई है। एशियाई देशों के साथ-साथ यूरोप और अमेरिका के देशों, जैसे — मॉरिशस, फिजी, केनिया, नैरोबी, ब्रिटेन, दक्षिण अफ्रीका, बर्मा आदि विभिन्न देशों से हिंदी जानने वाले लोग हैं। जनसंचार माध्यमों द्वारा भी इसे अपनाया जा रहा है। संचार माध्यम अपने कार्यक्रमों व विज्ञापनों आदि को हिंदी भाषा में विकसित कर रहे हैं। ऐसे में हिंदी भाषा के प्रति हीनता का भाव हमारा खुद का बनाया हुआ है। भाषाई संदर्भों में आज की मान्यता है कि आने वाले समय में वही भाषाएँ जीवित रहेंगी, जो बाज़ार की भाषाएँ होंगी। आज हिंदी भाषा दुनिया के सबसे बड़े बाज़ार की संपर्क भाषा के रूप में उभरी है। हमें उसके भविष्य के प्रति आशावान रहना होगा। कक्षा में अपने विद्यार्थियों को हिंदी भाषा के इस पक्ष से अवगत कराना होगा और हिंदी भाषा के प्रयोग के प्रति उत्साहित करना होगा।
- भाषा शिक्षा सीधे-सीधे हमारे विद्यालयों और विद्यालयों के भीतर कक्षा में होने वाले क्रियाकलापों से जुड़ी हुई है। लेकिन स्थितियाँ यहाँ भी संतोषजनक नहीं हैं। भाषा-शास्त्री प्रोफ़ेसर रमाकान्त अग्निहोत्री कहते हैं, "बच्चों की भाषा को स्कूल में खामोश कर दिया जाता है, यह स्थिति बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। बच्चे की मातृभाषा उसकी पहचान और ज्ञान की भाषा है। यह सामाजिक ताने-बाने के बीच संवाद को बरकरार रखने वाली भाषा है।" हमारे विद्यालय, कक्षा के भीतर मातृभाषा के मान तथा उसकी पहचान को बनाए रखने में बाधा उत्पन्न करते हैं।
- हमें ध्यान रखना होगा कि भाषा शिक्षा एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है। अक्षर और मात्राओं की जानकारी देने की प्रारंभिक अवस्था में एक शिक्षक विद्यार्थियों के बीच प्रतीकों का आश्रय लेता है। 'अ' अक्षर ज्ञान देने हेतु भाषाई स्तर पर कोई अन्य विकल्प ना होने के कारण शिक्षक 'अ' से अनार व 'आ' से आम का आश्रय लेता है। यहाँ अनार और आम अक्षरों को सिखाने के लिए विद्यार्थियों के ज्ञात प्रतीक हैं। अब अगर थोड़ी बड़ी अवस्था में एक विद्यार्थी के पास अपनी खुद की एक भाषा का ज्ञान है तो किसी दूसरी भाषा को सिखाने के लिए ज्ञात, प्रथम भाषा, ज्ञात प्रतीक की जगह ले सकती है। अतः एक भाषा को सिखाने में पूर्व में सीखी गई या विद्यार्थी की मातृभाषा सहायता ही है। हमारी भाषा शिक्षा की कक्षाओं में प्रायः विद्यार्थियों की रोज़मर्रा की बोल-चाल की भाषा की अवहेलना की जाती है। अग्निहोत्री के अनुसार, "भाषा की कक्षा में बच्चों को अपनी भाषा में अभिव्यक्ति का ज्यादा से ज्यादा मौका दें। हर बच्चे को अपनी बात कहने का अवसर मिले, इस बात का विशेष ध्यान रखें और कक्षा के तीन चार बच्चों की आवाज को पूरी क्लास की आवाज ना समझें।"

- हिंदी भाषा शिक्षा की एक अन्य चुनौती हिंदी भाषा के कुशल शिक्षकों की कमी भी है। विद्यालयों में हिंदी भाषा शिक्षक के पद को खास महत्व ना दिए जाने की प्रवृत्ति के कारण तमाम विद्यालयों में हिंदी भाषा शिक्षक की नियुक्ति पर ध्यान ही नहीं दिया जाता है। अंग्रेज़ी, विज्ञान तथा गणित कक्षा के महत्वपूर्ण विषय हैं, उनके शिक्षक की नियुक्ति प्राथमिकता है। हिंदी तो सहायक शिक्षक के रूप में कोई भी शिक्षक पढ़ा देगा। ऐसी मानसिकता के कारण विद्यालयों से बेहतर हिंदी शिक्षकों को नियुक्ति के अवसर ही नहीं मिल पाते हैं। भारतीय परिवारों में बच्चों को पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया के बीच माता-पिता भी हिंदी भाषा पढ़ाए जाने में कोई विशेष रुचि नहीं लेते हैं। अंग्रेज़ी पढ़ता, अंग्रेज़ी सीखता बच्चा माँ-बाप की आँखों का तारा है। हिंदी भाषी क्षेत्रों के परिवारों में हिंदी भाषा एक अतिरिक्त विषय का बोझ मात्र है जिसे परीक्षा के दो-तीन दिन पहले पढ़कर बच्चा पास ही हो जाएगा। परिवारों में हिंदी भाषा की यह उदासीनता बच्चों को हिंदी के प्रति बहुत आकर्षित नहीं कर पाती और परीक्षा पास कर लेने की जानकारी तक पढ़ने की सीमा में पढ़ी गई हिंदी भाषा उन्हें हिंदी की सामान्य जानकारी तक ही सीमित रख पाती है। हाईस्कूल, इंटर पास विद्यार्थी भी बेहतर हिंदी लिख सके, ऐसा हो नहीं पाता। अहिंदी भाषी क्षेत्रों के परिवारों में भी विद्यार्थी पर अपनी मातृभाषा या अंग्रेज़ी भाषा को पढ़ने पर ही ज़ोर दिया जाता है। हिंदी भाषा का अध्ययन विद्यालयों में कक्षा पास कर लिए जाने की शिक्षा तक ही सीमित है। माथुर उल्लेख करते हैं कि 10 वर्षीय विद्यालयी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् अहिंदी भाषी क्षेत्र के विद्यार्थी का हिंदी भाषा का ज्ञान कक्षाएँ पास कर लेने भर तक ही सीमित है। हिंदी भाषा का सहज प्रयोग कर पाना उनके लिए संभव नहीं हो सका है।
- बहुभाषी समाज में प्रायः एक भाषा किसी निश्चित क्षेत्र के दायरे में ज़्यादा प्रभावपूर्ण होती है। तो कोई दूसरी भाषा किसी अन्य क्षेत्र में। अकसर भाषा विशेष जिस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है, उस क्षेत्र के संदर्भ में उसे अक्षम माना जाने लगता है। भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से ऐसा कहा जाना उचित नहीं है। कोई भी भाषा स्वयं में अधूरी अथवा अविकसित नहीं होती है, केवल उसका प्रयोग क्षेत्र और व्यवहार सीमित या विस्तृत होता है। सभी भाषाएँ अपनी मूल रचना और प्रकृति में उन संभावनाओं से युक्त होती हैं, जो किसी भी विकसित भाषा के लिए आवश्यक हैं। हिंदी भाषा पर भी प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि हिंदी भाषा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की दृष्टि से कमज़ोर है, वह अंग्रेज़ी भाषा की तुलना में अधूरी तथा अविकसित है। हमें जानना होगा कि यह एक भ्रान्ति मात्र है, क्योंकि अंग्रेज़ी उन विशेष सामाजिक संदर्भों में प्रयोग में लाई जा रही है, जिनमें हिंदी का प्रयोग नहीं होता था। हिंदी

भाषा को यह अवसर ही नहीं मिला कि वह इन संदर्भों में प्रसार ले। हिंदी भाषा शिक्षण में आज एक बड़ी चुनौती विद्यालयों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के प्रति सहजता विकसित करना भी है। विज्ञान व तकनीक के लिए विज्ञान आदि की पुस्तकों में हिंदी भाषा में प्रायः इतने जटिल शब्द रखे गए हैं कि विद्यार्थी अंग्रेज़ी शब्दों की ओर लौट पड़ते हैं। हमें अंग्रेज़ी भाषा के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली की सहज एवं व्यावहारिक हिंदी शब्दावली विकसित करनी होगी।

- व्यापार, तकनीकी और चिकित्सा आदि क्षेत्रों की अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने माल की बिक्री के लिए संबंधित सॉफ़्टवेयर, ग्रीक, अरबी, चीनी सहित विश्व भर की लगभग 30 से अधिक भाषाओं में बनाती है। यहाँ हिंदी का प्रयोग नहीं हो रहा है। निस्संदेह इससे कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर, तकनीकी भाषा आदि नज़रिये से हिंदी भाषा का विकास ही नहीं हो पा रहा है। विद्यालयों में पठन-पाठन के बीच ये शब्द गायब हैं। यदि हैं भी तो उनका स्वरूप इतना जटिल व अव्यावहारिक है कि विद्यार्थी उसका उपयोग लिखने-पढ़ने में कर ही नहीं पाते हैं। हमें इस दिशा में भी समाधान ढूँढ़ने होंगे।

समाधान

यह ठीक है कि विविध राजनीतिक कारणों से भले ही आज तक हिंदी को राजभाषा की वास्तविक प्रतिष्ठा ना मिल सकी हो, किंतु इस बात में संदेह नहीं है कि संपूर्ण देश में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी सहजतापूर्वक व्यावहारिक स्तर पर प्रचलन में है, स्वीकृत है, साथ ही नयी चुनौतियों को स्वीकार भी कर रही है। भारत देश का एक-एक बाशिंदा मूलतः बहुभाषी ही है। हम देखें तो हमारा काम किसी एक भाषा से चलना बहुत मुश्किल है। हमें भारत के बहुभाषिक स्वरूप को सच्चे दिल से स्वीकारना होगा और इन सबके बीच हिंदी भाषा की महत्ता को जानते-समझते हुए उसके पठन-पाठन के लिए एक ऐसा माहौल और व्यवस्था बनानी होगी, जिससे हिंदी भाषा शिक्षा की उपर्युक्त तमाम चुनौतियों का समाधान हो सके। संक्षेप में, कुछ उपाय इस प्रकार हो सकते हैं—

- भाषा संवाद के साथ एक व्यक्ति का विचार और उसका भाव भी है। मातृभाषा जो कि एक बच्चे के सीधे दिल से जुड़ी हुई है, कक्षा में उसके कमतर होने का अहसास उसके खुद के कमतर होने का अहसास है। हमें अपने बच्चों को इस हीन भाव से दूर रखना होगा। हिंदी भाषा चूँकि भारत देश के एक बड़े वर्ग द्वारा बोली जाने वाली भाषा है और इसका प्रसार आज की ज़रूरत भी है, अतः विद्यार्थियों में हिंदी भाषा के प्रति गौरव का भाव विकसित करना होगा।
- हिंदी भाषा समझने और बोलने में सरल है। साथ ही इसे सीखना भी सरल है। इसकी वर्णमाला पूर्ण व वैज्ञानिक है, इसकी लिपि सरल, सुंदर, सुडौल व व्यंजक है। यह भारतवर्ष के बहुत बड़े भूखंड की मातृभाषा है। अतः विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की उपेक्षा ठीक नहीं है। हमें हिंदी भाषा की इस सहजता से अपने विद्यार्थियों को परिचित कराना होगा।

- अहिंदी भाषी प्रदेशों में संस्कृत भाषा सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है, क्योंकि यह भारत की सांस्कृतिक एवं आधार भाषा है। संस्कृत शब्दों से युक्त भाषा सभी के लिए सुगम है। अतः भारत देश के विविध प्रांतों में तत्सम शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग वाली हिंदी, पठन-पाठन में अधिक सहायक होगी। हिंदीतर भाषी प्रदेशों के हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापकों को यदि संस्कृत के साथ-साथ प्रादेशिक भाषा का भी अच्छा ज्ञान हो तो वह संस्कृत की सहायता से हिंदी के शब्दों को हिंदीतर भाषा के शब्दों से संबंध बताकर, हिंदी भाषा शिक्षा को सहज बना सकेंगे। प्रादेशिक भाषा की जानकारी होने से अध्यापक ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सकता है जो उभयनिष्ठ हों, अर्थात् हिंदी एवं प्रादेशिक भाषा दोनों में प्रयुक्त होते हों। इसी प्रकार, दोनों के व्याकरणों में साम्य ढूँढ़ कर प्रादेशिक भाषा को हिंदी के निकट भी लाया जा सकता है।
- प्रादेशिक भाषा से हिंदी तथा हिंदी से प्रादेशिक भाषा में अनूदित सामग्री की उपलब्धता भी हिंदी तथा अहिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिंदी भाषा के पठन में सहायक हो सकती है। अनूदित रूप में विविध भाषाओं की उपलब्ध सामग्री विद्यार्थियों के मन में एक-दूसरे की भाषा के प्रति सम्मान का भाव स्वत: विकसित करेगा। हिंदी भाषा के साहित्य से अनजान एक विद्यार्थी अपनी खुद की भाषा में उसके अनूदित रूप को पढ़कर अवश्य ही न केवल हिंदी भाषा के प्रति आकर्षित होगा, बल्कि उसे सीखना भी चाहेगा।
- व्यावहारवादी मनोविज्ञानी यह जानते हैं कि बालक के भाषा अधिगम में कोई विशिष्टता नहीं होती है। भाषा भी केवल अनुभव द्वारा या अभ्यास द्वारा सीखी जाती है। अनुभव व प्रशिक्षण द्वारा उनके मन पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। हिंदी भाषा शिक्षा में अनुभववाद के इस सिद्धांत को स्वीकृत करना होगा। अनुभव व अभ्यास के द्वारा हिंदी भाषा उन तक पहुँचानी होगी। पाठ्यक्रम में एक पाठ्यपुस्तक का अध्ययन मात्र यहाँ प्रभावी नहीं है। छोटे-छोटे वाक्यों का अभ्यास, उनका व्यवहार में चलन तथा उनके निरंतर प्रयोग द्वारा हम अपने विद्यार्थियो को हिंदी भाषा की बेहतर जानकारी दे सकेंगे।
- हिंदी भाषा शिक्षण में टी.वी., रेडियो, टेपरिकॉर्डर आदि संचार माध्यम बहुत सहायक हो सकते हैं। संचार माध्यमों से दैनिक व्यवहार की भाषा की जानकारी विद्यार्थी बड़ी सहजता से प्राप्त कर सकते हैं। मनोरंजक कार्यक्रमों व समाचार आदि के माध्यम से विद्यार्थियों के शब्द भंडार को विकसित करने में मदद ली जा सकती है। हिंदी भाषा शिक्षक को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि विद्यार्थी के लिए भाषा ऊपर से लादी हुई न जान पड़े। पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ इतने रुचिकर हों कि हिंदी सीखने की ओर वह स्वतः प्रवृत्त हो। शिक्षण युक्तियों में वे सभी स्वाभाविक एवं कृत्रिम युक्तियाँ सम्मिलित की जा सकती हैं, जिनका उद्देश्य शिक्षण के ढंग को प्रभावशाली बनाना होगा।

- हाल के वर्षों में कंप्यूटर में हिंदी का प्रयोग तेज़ी से बढ़ा है। कंप्यूटर को निर्देशन देने और ब्राडजर की सुविधा भी हिंदी में उपलब्ध है। विभिन्न विषयों की जानकारी भी डिजिटल रूप में हिंदी में उपलब्ध है। लेकिन कक्षाओं में विद्यार्थी प्रायः इनके प्रति उदासीन हैं। महँगे निजी स्कूल के विद्यार्थी इन सुविधाओं के प्रयोग के प्रति उदासीन हैं, तो गाँव-देहातों के हिंदी भाषा-भाषी विद्यार्थियों की पहुँच इन सुविधाओं तक हो ही नहीं सकी है। हमें इन स्थितियों के प्रति सचेत होना होगा। अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों के विद्यार्थियों को हिंदी के प्रति आकर्षित करने तथा गाँव-देहात और छोटे-बड़े कस्बों के विद्यार्थियों तक हिंदी भाषा में उपलब्ध डिजिटल सुविधाएँ पहुँचाने के प्रयास करने होंगे।
- भाषा की संपन्नता, उसका संवर्धन एक देश की अपनी खुद की पहचान है। भारत देश को भी संपूर्ण विश्व में अपनी खुद की पहचान के लिए राजभाषा हिंदी के प्रसार से कोई समझौता नहीं करना चाहिए। विद्यालयों में हिंदी भाषा शिक्षा को प्रभावपूर्ण भाषा बना सकते हैं। उसे देश का गौरव बना सकते हैं। निस्संदेह हमें इसके लिए हर संभव प्रयास करने होंगे।

उपर्युक्त व्यवस्थाओं के क्रम में हमें ध्यान रखना होगा कि भाषा शिक्षा अन्य विषयों — गणित, विज्ञान आदि की तरह सीखने-सिखाने की एक प्रक्रिया मात्र नहीं है। यहाँ तो एक-एक शब्द, शब्दों की व्याख्याएँ, उनकी अभिव्यंजनाएँ दिलों से, सोचने समझने के तरीकों से, हमारे मस्तिष्क की गाँठो से अंतर्मन तक की पहुँच का एक माध्यम भी हैं। थोड़े और विस्तृत रूप में भाषाएँ हमारा स्वाभिमान बन हमारी जड़ों की मज़बूती बन जाती हैं। किसी भी राष्ट्र का बेहतरीन साहित्य वहाँ लिखी जाने वाली कथा, कहानियाँ, कविताएँ उनकी अपनी खुद की भाषाओं में हुआ करती हैं। हमें भी अपनी कक्षाओं के भीतर हिंदी भाषा शिक्षण के माध्यम से एक ऐसा माहौल बनाना होगा, जिसमें कक्षा में बैठे, छोटे-बड़े बच्चों का हृदय अपनी इस राष्ट्रभाषा के प्रति गौरव से भर सके। उनके दिलों में उतरा गौरव उनकी कॉपी-किताबों में सुंदर अक्षरों की छाप बने और ये सुंदर अक्षर उनके दिलों में आकार लें, उनके विचारों को, उनके द्वारा सीखे गए ज्ञान को, उनकी खुद की भाषा (हिंदी) में मुखरित कर सकें। ज्ञान-विज्ञान के पारंपरिक और आधुनिक, दोनों शाखाओं में हिंदी भाषा सहज संवाद, सहज क्रियाशीलता का आधार बन सके। इस पूरे क्रम में ध्यान इस बात का भी रखना होगा कि विविध क्षेत्रीय भाषाओं की अनदेखी न हो। अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी की भी अपनी महत्ता है। हमारी कक्षाओं को इतना उदार तो होना ही होगा कि वह कक्षा में, विद्यार्थियों के घरों, आस-पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा को स्वीकार करें। इस भाषा के माध्यम से ही हिंदी भाषा को उन्नत करना होगा। बहुभाषा-भाषी भारत देश में हिंदी शिक्षण को प्रभावशाली बनाने का यही मूल आधार है।

संदर्भ

केंद्रीय हिंदी संस्थान. 2011. *गणवेषणा*. केंद्रीय हिंदी संस्थान. नयी दिल्ली. पृ. 94.

गाँधी, मोहन दास करमचन्द. 2008. *मेरे सपनों का भारत*. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद. पृ. 214.

राय, अमृत. 1990. *रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग-2)*. साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली. पृ. 339.

माथुर चन्द्रिका. टीचिंग हिंदी एज़ ए सेकेंड लैंग्वेज टू नॉन हिंदी स्पीकिंग चिल्ड्रेन. www.rishivalley.org/hindi-ki-dunia https//educationmirror.org.

प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम

रत्नर्त्तु मिश्रा*

यह लेख प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम के संदर्भ में प्रस्तुत है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान में हुए अनुसंधान कार्यों पर आधारित रचनावादी उपागम के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता अपनी सक्रिय सहभागिता द्वारा अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर नवीन विचार और संप्रत्यय निर्मित करता है तथा अनुभवों द्वारा ज्ञान का निर्माण करता है। अधिगम संसार की व्यक्तिगत व्याख्या है जिसमें अनुभवों के आधार पर अर्थ का विकास होता है। हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है अर्थात् अर्थ निर्माण ही सीखना है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी की सक्रिय सहभागिता शिक्षा को रुचिपूर्ण बना देती है, जबकि परंपरागत शिक्षण पद्धति ज्ञान के बाह्य आरोपण पर आधारित है, जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों के समक्ष सूचनाओं की एक समान प्रस्तुति कर दी जाती है। विद्यार्थियों को इन सूचनाओं को याद करके परीक्षा में उन सूचनाओं की समान प्रस्तुति करनी होती है। स्मृति आधारित यंत्रवत शिक्षण से कक्षा का वातावरण अरुचिकर हो जाता है। आज के समय में जब विद्यार्थी पर अधिकाधिक ज्ञानार्जन का दबाव है, तब पर्यावरण शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय की परंपरागत शिक्षण पर आधारित प्रस्तुति विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों में अरुचि ही उत्पन्न करेगी। प्राथमिक स्तर पर दबावरहित रुचिपूर्ण पर्यावरण शिक्षा आज की आवश्यकता है। इस लेख में प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता, रचनावाद के सिद्धांतों और उनके आधार पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।

प्रकृति असीमित है और उसके रहस्य भी। प्रकृति के असीमित रहस्यों को जान लेने की इच्छा मनुष्य में सदा से ही रही है। प्रकृति के रहस्यों को जान लेने की मानवीय अभिलाषा के कारण हुए असीमित प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कार हुए। इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन को अत्यधिक सुविधापूर्ण बनाया। विज्ञान द्वारा प्राप्त उपहारों ने सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने की मानवीय इच्छाओं को और बढ़ा दिया। विज्ञान के क्षेत्र में एक के बाद एक हुई खोजों

* *प्रवक्ता,* बी.एड. विभाग, डी.बी.एस. महाविद्यालय, कानपुर 208006

Chapter 3.indd 25 10/1/2018 2:38:59 PM

के परिणामस्वरूप हुए तीव्र विकास के विपरीत परिणाम भी सामने आए। मशीनीकरण और औद्योगिक विकास के कारण प्राकृतिक पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुँची।

तात्कालिक लाभ की कामना से किए गए प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पारिस्थितिक संतुलन को विकृत करने का कार्य किया। अनेक वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के विलुप्तीकरण के कारण जैव-विविधता का अस्तित्व संकटमय हो गया है, साथ ही मानव सभ्यता का भविष्य भी सुरक्षित नहीं रहा। विविध वनस्पतियों एवं जीव-प्रजातियों के विलुप्तीकरण, ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि, अम्ल वर्षा, प्रदूषण, ओज़ोन परत का निरंतर क्षरण जैसी समस्याओं का जन्म जलवायु परिवर्तन का कारण बन रहा है, जिसके परिणामस्वरूप नित नवीन समस्याएँ जन्म ले रही हैं और पृथ्वी को धीरे-धीरे विनाश की ओर ले जा रही हैं। मशीनों के अत्यधिक प्रयोग ने केवल प्राकृतिक पर्यावरण को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि सामाजिक पर्यावरण पर भी अपना प्रभाव डाला। दैनिक जीवन में वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग से मनुष्य ने शारीरिक श्रम करना कम कर दिया और अपने दैनिक कार्यों के लिए भी मशीनों पर निर्भर हो गया। दिनचर्या में हुए इस बदलाव से अनेक बीमारियों का जन्म होने लगा। इसके साथ ही लोगों के पारस्परिक संबंधों में भी परिवर्तन हुआ। सामाजिक संबंध एक दायरे में सीमित हो गए। एकल परिवारों में वृद्धि होने लगी। विकास की दौड़ में आगे निकल जाने की भावना ने ऐसी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया जिसने मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी को अत्यधिक बढ़ा दिया। एक ओर प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ने से भौतिक स्तर पर अनेक परिवर्तन हुए और अवांछित परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं तो दूसरी ओर प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी। इस प्रकार अनेक पर्यावरणीय समस्याओं के जन्म से मानव-जीवन अस्त-व्यस्त और संकटमय होता जा रहा है।

निरंतर उत्पन्न होती जा रही नित-नवीन संकटपूर्ण स्थितियों का एकमात्र कारण स्वयं मानव जाति के पर्यावरण के प्रतिकूल कृत्य हैं। इस अप्रत्याशित स्थिति से बचने के लिए व्यापक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया गया, जिससे कि राष्ट्रीय और वैश्विक, दोनों ही स्तरों पर ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जा सके जो पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हों, जागरूक हों तथा पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान दें।

प्राथमिक स्तर और पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता

आज हर स्तर पर पर्यावरण की शिक्षा दी जानी आवश्यक है, किंतु पर्यावरण संबंधी स्थायी ज्ञान के विकास के लिए शिक्षा-व्यवस्था का प्राथमिक स्तर सर्वाधिक उपयुक्त समय माना जाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पारिस्थितिकी बायोलॉजी विभाग का मत है कि पर्यावरण की सही समझ व्यक्ति को तभी प्राप्त हो सकती है, जब बाल्यकाल से ही उसे पर्यावरण के संबंध में प्राथमिक जानकारी दी जाए। विभागीय विशेषज्ञों ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि पर्यावरण की शिक्षा जब तक प्राथमिक स्तर से प्रारंभ नहीं की जाएगी, उच्चतर

स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा का कोई विशेष लाभ नहीं हो पाएगा (खानकाही और अन्य, 2003)।

प्राथमिक शिक्षा जन्म के साथ आरंभ होकर जीवनपर्यंत चलने वाली शिक्षा प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण है। यह विद्यार्थी के व्यवस्थित और औपचारिक अधिगम का आरंभ बिंदु है जो कि व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वाधिक योगदान देती है। बचपन में निर्मित अवांछित आदतें उच्च शिक्षा द्वारा भी सरलता से समाप्त नहीं होतीं। मांटेसरी ने बच्चे के ग्रहणशील मस्तिष्क को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार ग्रहणशील मस्तिष्क, मानव द्वारा निर्मित समाज का आधार है (मांटेसरी, 1997)। बच्चा शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार सीखना आरंभ कर देता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में अपेक्षाकृत स्थिरता आ जाती है, किंतु उसकी मानसिक योग्यताओं में निरंतर वृद्धि होती जाती है। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण वह जिन वस्तुओं के संपर्क में आता है, उनके विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करता है। आरंभिक जीवन में यह ज्ञान मुख्यत: उसके परिवेश से जुड़ा होता है। परिपक्वता होने पर उसमें अपने कार्यों को स्वयं करने की भावना उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ ही वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। वह निरंतर कुछ-न-कुछ करता रहता है। उल्लेखनीय है कि अपने आस-पास की वस्तुओं को अपने दृष्टिकोण से देखता है तथा उन वस्तुओं के नवीन और विविध उपयोग एवं अंतर्क्रिया के द्वारा आधारभूत ज्ञान स्वयं निर्मित करता है, जो उसके भावी संज्ञानात्मक विकास का आधार बनता है। विकास के प्रत्येक स्तर पर अपेक्षित व्यक्तियों, वस्तुओं एवं सांस्कृतिक उपादानों से अंतर्क्रिया एवं परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव उसके संज्ञान को उत्तरोत्तर दृढ़ करता है। बाल-मस्तिष्क की इन प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा को रुचिपूर्ण बनाना समय की माँग है।

पर्यावरण अध्ययन एक ऐसा विषय है जो कि पूरी तरह से बालक के परिवेश से जुड़ा हुआ है। अत: औपचारिक पर्यावरण शिक्षा को बालक के परिवेश से जोड़ा जाना ज़रूरी है। इस आयु वर्ग के बच्चे अपने परिवेश को अपने दृष्टिकोण से देखते और परखते हैं। अत: वे सक्रिय होकर पर्यावरण संबंधी विचार निर्मित कर सकते हैं और इस प्रकार नवीन ज्ञान का सृजन संभव हो सकता है। इस स्तर पर बच्चों को अपने परिवेश की पहचान, पर्यावरण के साथ अपने विशिष्ट संबंधों की जानकारी तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु आवश्यक उचित आदतों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें वे बाधारहित होकर अधिगम करते हुए अपने ज्ञान का सृजन कर सकें। वातावरण ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी सक्रिय अधिगमकर्ता बनकर रुचिपूर्ण ढंग से पर्यावरण संबंधी ज्ञान, कौशल तथा सकारात्मक अभिवृत्तियों को आत्मसात् कर सकें और अपने परिवेश को समझते हुए निर्मित नवीन ज्ञान का उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में कर पाएँ। इसी कारण संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार की गई है और अब परंपरागत शिक्षण के स्थान पर रचनावाद संबंधी विचारों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है।

रचनावाद

बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में व्यवहार के साथ-साथ संज्ञानात्मक विकास एवं भावनात्मक तत्वों को सम्मिलित किए जाने के बाद रचनावाद का प्रादुर्भाव हुआ। फलस्वरूप शिक्षण-अधिगम के प्रतिमान में परिवर्तन की संभावना को बल मिला। गुड और ब्रूफ़ी (1990) के अनुसार रचनावादी सिद्धांतकार अधिगम को उस प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जिसमें उन संज्ञानात्मक संरचनाओं की प्राप्ति अथवा पुनर्व्यवस्थापन सम्मिलित होता है, जिनके द्वारा व्यक्ति सूचनाओं का प्रक्रियाकरण एवं संग्रहण करता है। ब्रूनर के अनुसार, अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति बाह्य संसार के साथ अर्थपूर्ण अंतर्क्रिया करके अपने वर्तमान अथवा पूर्वज्ञान के आधार पर नये विचार निर्मित करता है। अत: अनुदेशन उन अनुभवों एवं संदर्भों से संबंधित होने चाहिए जो विद्यार्थी को सीखने के लिए तत्पर और सक्षम बनाते हैं। अनुदेशन इस प्रकार संरचित किए जाने चाहिए कि विद्यार्थी के लिए अधिगम अर्थपूर्ण एवं सुगम बन सके। रचनावाद के अनुसार अनुभवों द्वारा ज्ञान का निर्माण होता है। अधिगम संसार की व्यक्तिगत व्याख्या है जिसमें अनुभवों के आधार पर अर्थ का विकास होता है (मेरिल, 1991)। हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है, अर्थ निर्माण सीखता है (एन.सी.एफ.–2005, पृ, 20)। जोनासेन (1991) का मत है कि बहुत-से मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण के विकास में रचनावाद प्रयुक्त किया है। ऑनबीन (1996) ने रचनात्मक अधिगम वातावरण के निर्माण हेतु सात लक्ष्यों का वर्णन किया है—

- ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के साथ अनुभव प्रदान किया जाए;
- बहुपरिप्रेक्ष्यों के लिए अनुभव और व्याख्या प्रस्तुत की जाए;
- वास्तविक तथा उचित संदर्भों में अधिगम को समाहित किया जाए;
- अधिगम-प्रक्रिया में अधिगमकर्ता के स्वामित्व और स्वर को प्रोत्साहित किया जाए;
- सामाजिक अनुभवों में अधिगम को समाहित किया जाए;
- बहुप्रकारीय प्रस्तुतीकरण के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए; तथा
- ज्ञान-निर्माण में स्व-जागरूकता को प्रोत्साहित किया जाए।

रचनावाद में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के अंतर्गत ऐसे अधिगम-वातावरण के निर्माण को महत्व दिया जाता है, जिसमें विद्यार्थी को स्वतंत्र चिंतन के अवसर प्राप्त हों तथा वह अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त कर सकें। किसी भी परिस्थिति को विद्यार्थी अपने दृष्टिकोण से देखें तथा अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर उस परिस्थिति के विषय में अपने विचार निर्मित तथा अभिव्यक्त करें। दबावमुक्त वातावरण में विद्यार्थी अधिकाधिक सीखता है। इस वातावरण में वह स्वयं अपने लक्ष्यों को निर्धारित करता है तथा उनकी प्राप्ति हेतु स्वयं मार्गों की खोज करता है। वास्तविक अधिगम तभी संभव होता है, जब विद्यार्थी स्वयं सक्रिय होकर शिक्षण प्रक्रिया में सहभागी बनता है।

शिक्षण प्रक्रिया में विद्यार्थियों के अपने अनुभवों और संदर्भों से संबंधित अनुदेशन उन्हें इच्छुक, जागरूक तथा अधिगम योग्य बनाने में सहायक होता है तथा सीखने में समायोचित सहायता उन्हें ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियों को सरलता से ग्रहण करने में समर्थ बनाती है। रचनात्मक उपागम शिक्षण तथा अधिगम के लिए नवीन प्रारूप प्रस्तुत करता है जो मुख्यत: विद्यार्थी-केंद्रित है।

परंपरागत शिक्षण और रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण में अंतर

परंपरागत शिक्षण में 'ज्ञान' को मात्र सूचनाओं का संग्रह माना जाता है तथा अध्ययन और अध्यापन प्रक्रिया में अध्यापक का कार्य ज्ञान के हस्तांतरण तक सीमित रहता है। परंपरागत शिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्यपुस्तक के आधार पर सभी विद्यार्थियों को एक समान सूचनाएँ प्रदान करना है जो उनके समक्ष मुख्यतया पाठ की व्याख्या या प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रस्तुत कर दी जाती हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे इन सूचनाओं को याद रखकर परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे। विद्यार्थियों द्वारा इन प्रश्नों के उत्तरों की प्रस्तुति बहुधा समान होती है। न्यूनतम समय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर लेने की होड़ लगी हुई है तथा अंश से पूर्ण की ओर ज्ञान प्राप्ति, बाह्य प्रेरणा स्रोत एवं संख्यात्मक मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया की विशिष्टताएँ बन गई हैं। वर्तमान शिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य विद्यार्थी को कम समय में अधिकाधिक जानकारी से युक्त बना देना है, जिससे वह इस प्रतिस्पर्धी परिवेश में स्वयं को प्रतिष्ठित कर सकें। यह प्रक्रिया विद्यार्थियों के विचारों तथा दृष्टिकोणों को समुचित स्थान प्रदान नहीं करती, अपितु पूर्व निर्धारित पाठ्यवस्तु को आत्मसात् करने पर बल देती है। पारंपरिक अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है, जो विद्यार्थी द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं को पुनर्बलित करके विकसित किया जाता है। परंपरागत शिक्षण में अधिगमकर्ता वह है जो यंत्रवत सीखता है और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी न होकर केवल सुनने और याद करने का कार्य करता है। अधिगमकर्ता प्रदत्त ज्ञान को स्मृति में बनाए रखने का प्रयास करता है और कभी-कभी ही जिज्ञासाओं की संतुष्टि हेतु प्रश्न पूछता है।

परंपरागत शिक्षण के विपरीत रचनावादी उपागम पर आधारित शिक्षण में ज्ञान को बाह्य रूप से आरोपित करने के स्थान पर विद्यार्थियों के अनुभवों, विचारों तथा दृष्टिकोणों के आधार पर ज्ञान के निर्माण पर बल दिया जाता है। यह उपागम विद्यार्थी को केंद्र में रखकर शिक्षण प्रक्रिया का आयोजन करता है। इस प्रकार, अधिगम एक प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ज्ञान की रचना करता है। वह स्वयं क्रियाशील रहते हुए खोज करता है, प्रश्न पूछता है, अपने विचार सबके सामने प्रस्तुत करता है और सहिष्णुतापूर्वक अन्य विद्यार्थियों के विचारों को सुनता है। इस प्रकार के विचार-विमर्श द्वारा अंतर्क्रिया विकसित होती है और ज्ञान के निर्माण में सहायता मिलती है। वह स्वयं ज्ञान का सृजन करता है तथा अध्यापक सुगमकर्ता है जो अधिगम वातावरण को सुविधाजनक बनाते हुए विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन के लिए प्रोत्साहित करता है और स्वयं भी सीखता है। रचनात्मक उपागम आंतरिक प्रेरणा के विकास को महत्व देता है और गुणात्मक मूल्यांकन का समर्थन करता है।

सारणी 1 — परंपरागत शिक्षण एवं रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण में अंतर

आधार	परंपरागत शिक्षण	रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण
उद्देश्य	पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्यपुस्तक के आधार पर सभी विद्यार्थियों को एक समान सूचनाएँ प्रदान करना	विद्यार्थियों के अनुभवों, विचारों तथा दृष्टिकोणों के आधार पर ज्ञान का निर्माण
शिक्षण प्रक्रिया	अध्यापक-केंद्रित	विद्यार्थी-केंद्रित
प्रेरणा	बाह्य	आंतरिक
कक्षा-कक्ष	अध्यापक द्वारा नियंत्रित, निष्क्रिय	दबावमुक्त, सौहार्दपूर्ण
अध्यापक	सूचना प्रदाता, प्रश्नकर्ता, कक्षा-नियंत्रक	सुगमकर्ता, सहयोगी, स्वयं एक अधिगमकर्ता
अधिगमकर्ता	निष्क्रिय श्रोता	सक्रिय सहभागी, समस्या समाधानकर्ता
मूल्यांकन	संख्यात्मक	गुणात्मक

प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा और रचनावादी उपागम

रचनावादी उपागम में विद्यार्थी की सक्रियता, उसके परिवेश के साथ अंतर्क्रिया, अर्थपूर्ण अधिगम तथा अनुभवों के आधार पर ज्ञान निर्माण को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में रचनावादी उपागम को महत्व देते हुए ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ने का विचार प्रस्तुत किया गया। विद्यार्थी द्वारा लाए गए बाहरी दुनिया के अनुभवों को पुस्तकीय ज्ञान से जोड़ने पर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया रोचक बनती है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि विद्यार्थी अपने अनुभवों द्वारा विषय-वस्तु को समझे और उसमें आवश्यकतानुरूप कार्य करने की क्षमता विकसित हो सके। अत: प्राथमिक स्तर के शिक्षण में रचनात्मक उपागम विशेष उपयोगी है।

रचनावाद आधारित कक्षा-कक्ष

अधिगम सिद्धांतों में परिवर्तन एवं तत्संबंधी उपागम अंतरण के परिप्रेक्ष्य में, एन.सी.एफ.–2005 में कहा गया है कि हमें अपने बच्चों में ऐसी समझ विकसित करनी है, जिसके द्वारा संसार से अंतर्क्रिया तथा कार्य संपादन करते हुए वे अपनी तरह से ज्ञान रचना में सक्षम हो सकें। इस पृष्ठभूमि में वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था के अंतर्गत विद्यार्थियों की मूल्यांकन विधा में भी परिवर्तन आवश्यक है। रचनात्मक उपागम पर आधारित कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के वर्तमान विचारों एवं अनुभवों को महत्व देते हुए उन्हें सीखने के लिए स्वयं पहल करने, प्रश्नों के उत्तर तथा समस्याओं का समाधान स्वयं खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि वे सार्थक स्वतंत्र चिंतन कर सकें और अपनी बौद्धिक पहचान निर्मित कर सकें। यह सब ऐसे वातावरण में संभव हो सकता है, जहाँ प्रकरण बच्चों की रुचि से संबंधित हो, स्वयं प्रश्न विकसित करने और समस्याओं को परिभाषित करने का प्रशिक्षण मिले और वे स्वयं उत्तर खोजकर निर्णय लेने में संतुष्टि का अनुभव करें। इस कक्षा-कक्ष में परस्पर संवाद का स्थान महत्वपूर्ण है। रचनावादी उपागम में विश्वास करने वाले शिक्षक एक सुगमकर्ता के रूप में बच्चों के आस-पास उपस्थित रहते हैं तथा उनके द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों को दूर करने में अपना अनुभवी सहयोग देते हैं। विद्यार्थियों के अनुभवों को वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित करके उन्हें संसार से परिचित करवाया जाता है ताकि वे अमूर्त प्रत्ययों को समझने के लिए तत्पर

हो सकें। रचनावादी शिक्षाविदों के अनुसार सभी अधिगमकर्ता समान रूप से समान बातें नहीं सीखते, वरन् अनेक परिस्थितियों में तथा संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अधिगमकर्ताओं की व्याख्या भिन्न हो सकती है। शिक्षण प्रक्रिया में इस भिन्नता का उपयोग आवश्यक है।

अपने परिवेश से विद्यार्थियों का गहरा जुड़ाव, उससे प्राप्त अनुभवों और अनुभवों की व्यक्तिगत व्याख्या का पर्यावरण शिक्षा में प्रयोग महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, क्योंकि पर्यावरण शिक्षा का लक्ष्य मात्र पर्यावरण संबंधी सूचनाएँ एकत्रित करना अथवा संप्रत्ययों का विकास ही नहीं है, वरन् पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास तथा पर्यावरण संरक्षण संबंधी कौशलों का विकास भी है। प्राथमिक स्तर पर औपचारिक विद्यालयी शिक्षा को आस-पास के पर्यावरण तथा पारस्परिक अंतर्संबंधों की जानकारी, पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति समझ, पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक उचित आदतों के विकास से जोड़ा जाना चाहिए। उपयुक्त पाठ्यवस्तु के चयन के पश्चात् उसे स्थानीय संदर्भ से संबंधित करके अनुकूल शिक्षण-विधियों द्वारा प्रेषित किया जाना, पर्यावरण शिक्षा का अभीष्ट अंग है। पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं एवं वरीयताओं से जुड़ा होना चाहिए (गुप्ता और अग्निहोत्री, 2011)। पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यक्रम का स्थानीय संदर्भ में विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक विद्यार्थी का एक निजी विचार क्षेत्र होता है। यह विचार क्षेत्र उसके अपने निजी वातावरण से संबद्ध होता है। यह वातावरण ही उसका स्थानीय संदर्भ है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में उल्लिखित किया गया है कि बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है, जिसमें ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है। परिवेश के साथ अंतर्क्रिया करके ही बच्चा ज्ञान का सृजन करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालाँकि, पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही कुछ हद तक समझ की अवहेलना की गई है। इसीलिए इस दस्तावेज़ में हम शिक्षा को प्रासंगिक बनाने पर ज़ोर दे रहे हैं। सीखने को बच्चे के परिवेश में स्थित करने पर स्कूल एवं बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण तथा स्कूल के बीच की सीमा को सरंध्र बनाने का अपना अनुभव, ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है, बल्कि इसलिए भी ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है। यहाँ 'सरंध्र' शब्द के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा को ऐसा बनाने से है कि बच्चा अपने वातावरण और अपने विद्यालय के वातावरण को अलग-अलग न समझे, बल्कि वह स्कूल के अनुभवों को अपने दैनिक अनुभवों से और सामान्य जीवन के अनुभवों को विद्यालय से जुड़ा हुआ समझे। जो अनुभव वह विद्यालय में प्राप्त करे, उनका उपयोग वह अपने जीवन में कर पाए और विद्यालय से बाहर मिलने वाले अनुभवों का विद्यालय में प्रयोग कर अपने ज्ञान का स्वयं सृजनकर्ता बन सके, जिस पर रचनावाद में मुख्य बल है।

अधिगम-प्रक्रिया में परिवेश के साथ अंतर्क्रिया का विशेष मूल्य है। परिवेश से जो शिक्षण होता है, वह सजीव व रोचक होता है और उससे बच्चे की रचनात्मक क्षमता का विकास होता है। बच्चा जब अपने बुजुर्ग से परिवार या वंश के संबंध में जानकारी जुटाता है, तो उसमें अपने बुजुर्ग के प्रति सम्मान का भाव बढ़ता है। इस प्रकार के शिक्षण में अपार संभावनाएँ हैं। इससे बच्चे में जिज्ञासा, प्रश्न पूछने, सिलसिलेवार सोचने, सूचना को विश्लेषित और वर्गीकृत करने की क्षमता बढ़ती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में भी ज्ञान प्राप्ति में बच्चे द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर फिर से ज़ोर दिया गया है और सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन में 'ज्ञान का सामाजिक निर्माण' एक महत्वपूर्ण सिद्धांत रहा है। 'ज्ञान का सामाजिक निर्माण' अर्थात् अपने परिवेश की अंतर्वस्तु के साथ सक्रिय जुड़ाव। यह मुक्त अधिगम पद्धति है। इसमें 'पहुँच और समता' है 'विविधता' और 'लचीलापन' है और यह बच्चे की आवश्यकता और रुचि के अनुकूल है (मित्तल, 2010)। अधिगमकर्ता अपने आस-पास के प्राकृतिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के वातावरण से प्राप्त अनुभवों के माध्यम से अपने पर्यावरणीय ज्ञान की रचना कर सकता है। संस्कृति बहुल भारतीय परिप्रेक्ष्य में भौगोलिक स्थितियाँ और सामाजिक परिस्थितियाँ समान नहीं हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के विद्यार्थियों के अनुभव भी अलग-अलग होते हैं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के पर्यावरणीय अनुभवों में स्पष्ट भिन्नता होती है। इन क्षेत्रों की पर्यावरणीय समस्याएँ और पर्यावरण संरक्षण के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। इस कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के स्थानीय संदर्भ में भी पर्याप्त अंतर होता है। स्थानीय अनुभवों से विषय-वस्तु को जोड़ते हुए विद्यार्थियों को विस्तृत ज्ञान दिया जाना उपयुक्त सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थियों के दैनिक जीवन के सामान्य कार्य और लोकजीवन की परंपराओं का शिक्षा प्रक्रिया में उपयोग पर्यावरणीय ज्ञान के निर्माण में विशिष्ट भूमिका निभा सकता है। विद्यार्थी अपने प्राकृतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरणीय अनुभवों के माध्यम से उपयुक्त पर्यावरणीय ज्ञान का सृजन कर सकते हैं। विद्यार्थी किसी भी क्षेत्र के हों, पर्यावरण संबंधी तथ्यों से उन्हें अवगत कराने के लिए उनके परिवेश से जोड़कर पाठ का आरंभ करने से वे कक्षा में सक्रिय होकर अपने अनुभवों की सहज अभिव्यक्ति कर पाएँगे। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत अनुभवों को पाठ्यवस्तु के साथ जोड़ते हुए आगे बढ़ा जा सकता है। पाठ्यवस्तु की परिवेश से संबद्धता विद्यार्थियों के मन में सीखने के मानसिक दबावों को कम करेगी। सांस्कृतिक संदर्भ में उपलब्ध उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण तथा स्थानीय परिवेश में उपलब्ध संसाधनों एवं वस्तुओं का शिक्षण प्रक्रिया में अधिकतम उपयोग निश्चित रूप से बच्चों में प्रकृति के प्रति मित्रवत् व्यवहार तथा पारिस्थितिकी के प्रति जागरूकता विकसित करेगा तथा उनमें सकारात्मक मनोवृत्ति भी विकसित हो सकेगी। साथ ही साथ बच्चों में आचरण-विचार की शुद्धता, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य संबंधी आदतों की नींव भी बाल्यकाल

में ही पड़ सकेगी। जिस अनुपात में कक्षा-कक्ष की आंतरिक शिक्षण प्रक्रिया बाह्य जीवन से संबंधित होगी, उसी अनुपात में नीरस वातावरण की समाप्ति तथा रुचिपूर्ण शिक्षा प्रणाली का विकास संभव होगा।

पाठ्यवस्तु के स्थानीय संदर्भ में विकास के साथ-साथ विद्यार्थियों के समक्ष उसका समुचित प्रस्तुतीकरण भी अपरिहार्य है। पाठ्यवस्तु इस प्रकार संप्रेषित हो कि विद्यार्थी उसे सरलता से समझें और सीख सकें। कम आयु के विद्यार्थियों में अमूर्त तथा विस्तृत प्रत्ययों को समझने, उन पर विचार करने तथा मात्र सुनकर ही अथवा पुस्तक में पढ़कर वस्तु की पूर्ण कल्पना करने की क्षमता नहीं होती। अत: यह आवश्यक है कि विभिन्न अमूर्त प्रत्ययों को इस प्रकार से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए कि वे अपनी क्षमता के अनुरूप सीख सकें तथा अनुभव प्राप्त कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त शिक्षण-अधिगम सामग्री का उपयोग अपरिहार्य है। शिक्षण-अधिगम सामग्री के शिक्षण प्रक्रिया में उपयोग से पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण स्पष्ट, रोचक तथा अर्थपूर्ण बनता है और ज्ञान का स्थायित्व संभव होता है। विद्यार्थियों की जिज्ञासु और क्रियाशीलता जैसी प्रवृत्तियों की संतुष्टि के उचित अवसर प्राप्त होते हैं। सृजनात्मक क्षमता के प्रकटीकरण के अवसर भी उपलब्ध होते हैं। शिक्षा आयोग (1964 – 66) ने कहा कि शिक्षण की गुणवत्ता के विकास के लिए प्रत्येक विद्यालय में शिक्षण सामग्री की पूर्ति आवश्यक है। यह देश में वस्तुत: शैक्षिक क्रांति लाएगी। (कुलश्रेष्ठ, 1988)।

शिक्षण-अधिगम सामग्री से तात्पर्य कक्षा-कक्ष में पाठ योजना के अनुसार विशिष्ट अधिगम उद्देश्यों की सहायता हेतु शिक्षक द्वारा प्रयुक्त शैक्षणिक सामग्री के स्पेक्ट्रम से है (अबाउट. कॉम एलीमेंट्री एजुकेशन, 2014)। शिक्षण-अधिगम सामग्री में प्रत्येक वह सामग्री शामिल है जो कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सहायता करती है। शिक्षण-अधिगम सामग्री में चित्र, कविता, कहानी, क्रियाकलाप एवं स्व-अधिगम सामग्री आदि सभी को सम्मिलित किया जाता है। चित्रों को देखने में, कविताओं को याद करने में, कहानियाँ सुनने में विद्यार्थियों की विशेष रुचि होती है। चित्रों द्वारा अप्रत्यक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करना संभव होता है। उपयुक्त लय और बालमन की कोमल भावनाओं से युक्त कविताएँ बच्चों के मन को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। कविता द्वारा आस-पास के पर्यावरण, प्राकृतिक दृश्यों आदि का वर्णन बच्चों के लिए आनंददायक होता है। छोटे बच्चों के लिए कहानियाँ भी अत्यधिक आकर्षक होती हैं। नन्हें बच्चे खेल-खेल में कहानियों के माध्यम से

बहुत कुछ सीख लेते हैं और उनमें कल्पनाशीलता जैसा गुण भी विकसित हो जाता है। कविता और कहानियों को बच्चों के अपने पर्यावरण से जोड़कर प्रस्तुत किया जा सकता है। कम आयु के बच्चों में सदा ही कुछ-न-कुछ करते रहने की भी प्रवृत्ति होती है। जब कक्षा में ही उन्हें कुछ कार्यों को करने के अवसर प्राप्त होंगे, तब शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उनकी रुचिपूर्ण सहभागिता संभव हो सकेगी। इस स्थिति में कक्षा शिक्षण में क्रियाकलाप का विशेष महत्व है। करके सीखना, निरीक्षण-परीक्षण द्वारा सीखना, स्वानुभव द्वारा सीखना जैसी मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग अधिगम में वृद्धि के लिए आवश्यक माना जाता है। इन विधियों द्वारा शिक्षण-प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षण-अधिगम सामग्री के रूप में क्रियाकलाप का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है।

यह तथ्य भी उल्लिखित करना आवश्यक है कि सभी विद्यार्थियों को अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के समुचित अवसर प्राप्त हों, क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी की अधिगम क्षमता में भिन्नता विद्यमान होती है। शिक्षा प्रक्रिया में इस भिन्नता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से प्राथमिक स्तर की उच्च कक्षाओं में स्व-अधिगम सामग्री का उपयोग महत्वपूर्ण है। स्व-अधिगम सामग्री द्वारा विद्यार्थियों में स्वत: अध्ययन की आदत विकसित होती है और उन्हें अपनी गति और क्षमता से सीखने के अवसर भी प्राप्त होते हैं। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में स्व-अधिगम में सहायक शिक्षण-अधिगम सामग्री की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जिसकी सहायता से विद्यार्थी व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर अधिगम अनुभव प्राप्त कर सकें। साथ ही, शिक्षण-अधिगम सामग्री का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी निरंतर सक्रिय रहकर रुचिपूर्वक अध्ययन कर सकें। इसके लिए आवश्यक है कि स्पष्ट उद्देश्यों के साथ विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण एक इकाई के रूप में किया जाए। विद्यार्थियों के दैनिक जीवन और आस-पास के परिवेश से जुड़ी जानकारियाँ चित्रों, कविताओं, कहानियों के माध्यम से रोचक ढंग से स्व-अधिगम सामग्री में प्रस्तुत की जाएँ ताकि विद्यार्थियों की रुचि विषय-वस्तु के अध्ययन में बनी रहे। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि क्रियाकलापों का भी समावेश किया जाए, जिससे कि स्व-अधिगम सामग्री के अध्ययन में उनकी सक्रियता निरंतर बनी रहे और वे अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति कर पाएँ। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों को स्व-मूल्यांकन के अवसर भी प्राप्त होने चाहिए जिससे कि वे स्वयं द्वारा अर्जित ज्ञान की जाँच कर सकें।

पर्यावरण शिक्षा की विषय-वस्तु को विद्यार्थियों के स्थानीय परिवेश से जोड़कर पाठ्य सामग्री द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि वे सूचनाएँ खोजने के लिए प्रेरित हों। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों का दायित्व है कि वे विद्यार्थियों को इस प्रकार प्रेरित करें कि वे रचनावाद के सिद्धांतों के आधार पर पाठ्य सामग्री के प्रस्तुतीकरण से अपने अनुभवों को जोड़ पाएँ साथ ही उन्हें अपने व्यक्तिगत अनुभव व्यक्त

करने के अवसर भी उपलब्ध कराएँ। पर्यावरण से संबंधित खेल, कविता, कहानी आदि के द्वारा शिक्षा को रोचक बनाया जा सकता है। विद्यार्थियों से उनके अनुभव लिखवाए भी जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य भी दिए जा सकते हैं जिन्हें विद्यार्थी व्यक्तिगत के साथ-साथ सामूहिक रूप में भी कर सकें। इस प्रकार, विशेष सावधानीयुक्त निर्मित पाठ्य सामग्री के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी अधिगम प्रक्रिया में सहभागी बन सकेंगे और पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने में समर्थ हो पाएँगे।

मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान है। रचनावाद में गुणात्मक मूल्यांकन को महत्व देते हुए विद्यार्थियों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किए जाते हैं। इसके अनुसार सभी अधिगमकर्ता समान बातें नहीं सीखते वरन् विभिन्न अधिगमकर्ताओं द्वारा किया गया अधिगम भिन्न-भिन्न होता है। रचनावाद आधारित मूल्यांकन व्यक्तिनिष्ठता को महत्व देता है, जहाँ व्यक्तिगत प्रस्तुति महत्वपूर्ण है। पर्यावरण शिक्षण में इस प्रकार का मूल्यांकन विशेष महत्व रखता है। विद्यार्थी जब प्रश्नों के उत्तर अपने परिवेश से जुड़े अनुभवों के आधार पर देंगे तब न केवल उनके द्वारा अर्जित ज्ञान का स्थायीकरण होगा, अपितु उन्हें परीक्षा के दबाव से भी मुक्ति प्राप्त होगी और उनके व्यक्तिगत विचार परिलक्षित होंगे, जिससे ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया पूर्णता को प्राप्त कर सकेगी।

सुझाव

पर्यावरण शिक्षा आज के समय में आवश्यक है, किंतु यह भी आवश्यक है कि पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप तथा प्रस्तुतीकरण ऐसा हो कि विद्यार्थी रुचिपूर्वक पर्यावरण संबंधी विषय-वस्तु को सरलता से आत्मसात् कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं का अनुपालन आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं—

- स्थानीय पर्यावरण के आधार पर विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण;
- विद्यार्थी के प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण को महत्व;
- विद्यार्थी के दैनिक जीवन के सामान्य कार्य और लोकजीवन की परंपराओं का शिक्षा-प्रक्रिया में उपयोग;
- विद्यार्थी द्वारा उसके अपने परिवेश से लाए गए अनुभवों का शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग;
- विद्यार्थियों की सक्रियता में वृद्धि;
- समस्या-समाधानकर्ता के रूप में अधिगमकर्ता का विकास;
- सामूहिक क्रियाकलापों पर आधारित शिक्षण;
- पर्यावरण से संबंधित खेल, कविता, कहानी आदि का विशेष रूप से प्रयोग;
- पर्यावरण आधारित स्व-अधिगम सामग्री की व्यवस्था;
- स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर;
- गुणात्मक मूल्यांकन को महत्व; तथा
- परीक्षा के दबाव से मुक्ति।

इन सुझावों के उपयोग से निश्चय ही विद्यार्थियों को पर्यावरण संबंधी विषय-वस्तु को रोचक ढंग से ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। वे अपने स्वयं के परिवेश से लाए गए अनुभवों का उपयोग करते हुए अपने पर्यावरण संबंधी ज्ञान का निर्माण कर सकेंगे। न केवल विद्यालय, अपितु विद्यालय के बाहर भी वे स्व-निर्मित ज्ञान का उपयोग कर पाएँगे और उनके द्वारा किया गया अधिगम सार्थक सिद्ध हो सकेगा। रचनावाद के सिद्धांतों का प्रयोग शिक्षा को दबाव मुक्त बनाएगा, हमारी कक्षाएँ विद्यार्थियों के आनंद और उल्लास का केंद्र बनेंगी तथा रुचिपूर्ण पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

संदर्भ

अबाउट. कॉम. एलीमेंट्री एजुकेशन. 2014. *टीचिंग/लर्निंग मैटीरियल्स*.

कुलश्रेष्ठ, ए. के. 1988. *गणित शिक्षण*. सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ.

खानकाही, एन. और अन्य. 2003. *पर्यावरण दशा और दिशा*. डायमंड पॉकेट बुक्स, नयी दिल्ली.

गुड्स, टी.टी और ब्रोथी जे.एस. 1990. *एजुकेशन साइकोलोजी — ए रियलिस्टिक अप्रोच* (दूसरा संस्करण). लॉन्गमैन, व्हाइट प्लेन्स, न्यूयॉर्क.

गुप्ता, आर. और एन. अग्निहोत्री. 2011. पर्यावरण शिक्षा के स्वरूप की वर्तमान में प्रासंगिकता. *शिक्षा चिंतन*.

जोनासेन. 1991. *जोनासेनस कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रिंसिपल्स*.

पांडा. बी.एन. 2006. कंस्ट्रक्टिविज्म एंड द पैडागॉजी ऑफ़ एजुकेशन फ़ॉर पीस. *जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन*. 30(2), पृ. 21–29. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

ब्रूनर, जे. *कंस्ट्रक्टिविस्ट थ्योरी*.

मांटेसरी, एम. 1997. *ग्रहणशील मन — बाल मनोविज्ञान का विवेचन*. ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

मेरिल, एम.डी. 1991. कंस्ट्रक्टिविज्म एंड पीपुल इवेल्यूएशन. संपादन में अग्रवाल एम. 2007. *जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन*. 33(1), पृ. 16. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

मित्तल, एल. एन. 2010. आस-पास के परिवेश से शिक्षण. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*. 31(1), पृ. 22 – 24.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

रुचिपूर्ण शिक्षा प्रबोधिका. 1998. राज्य स्तरीय रुचिपूर्ण शिक्षा प्रकोष्ठ. शिक्षा निदेशालय, प्राथमिक शिक्षक संघ एवं यूनीसेफ, उत्तर प्रदेश.

हॉनबीन. 1996. *हॉनबीनस कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रिंसिपल्स*.

हाँ, शिक्षक शिक्षा में 20 सप्ताह की इंटर्नशिप !

जितेन्द्र कुमार पाटीदार*

विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में उत्तरोत्तर सुधार के लिए सरकारों एवं समाज द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। जिसमें शिक्षक की मुख्य भूमिका होती है। ऐसे में शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता तथा पेशेवर शिक्षकों की तैयारी एक महत्वपूर्ण सरोकार है। पेशेवर शिक्षकों की तैयारी के लिए विचार एवं चिंतन व्यक्त करते हुए शिक्षा आयोग (1966) ने कहा कि आज के दौर में शिक्षा के नवीन एवं गतिशील तरीकों की आवश्यकता की पूर्ति प्रभावी पेशेवर अर्थात् शिक्षक शिक्षा से ही संभव होगी। प्रथम राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा आयोग — 1983, राष्ट्रीय शिक्षा नीति — 1986 एवं पुनर्विचार समिति — 1990, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005, शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009, अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2009 तथा जस्टिस वर्मा आयोग — 2012 के साथ-साथ एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन — 2014 में शिक्षकों की पेशेवर तैयारी का एक मज़बूत खाका प्रस्तुत किया गया है। जिसमें शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या का अद्यतन स्वरूप देते हुए इंटर्नशिप की अवधि 20 सप्ताह (6 माह) कर दी गई है तथा इसे वर्तमान शिक्षक शिक्षा के समस्त कार्यक्रमों (कोर्सों) में कार्यान्वित किया जा रहा है। लेकिन इसे शिक्षक शिक्षा संस्थानों द्वारा एक चुनौती एवं पेशेवर शिक्षकों की बेहतर तैयारी के रूप में न देखकर, एक समस्या के रूप में देखा जाने लगा है। लेख के माध्यम से लेखक द्वारा शिक्षक शिक्षा संस्थानों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, विद्यार्थी-शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, शिक्षकों एवं प्रशासकों तथा अंत में समाज को शिक्षक शिक्षा की इंटर्नशिप पर समझ विकसित करने के लिए इंटर्नशिप का विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

आप सब जानते हैं कि हम अपने दैनिक जीवन में कई तरह की समस्याओं का सामना करते हैं। यदि हम बीमार होते हैं, तो हम शीघ्र ही डॉक्टर के पास जाते हैं। डॉक्टर को हम जिस बीमारी से पीड़ित हैं, उसके सारे लक्षण बताते हैं और चाहते हैं कि डॉक्टर ऐसी दवाई दे कि मेरी बीमारी दवाई खाते ही छू-मंतर हो जाए और हम एकदम स्वस्थ हो जाएँ तथा अपने दैनिक जीवन के कार्यों से जुड़ जाएँ। क्योंकि डॉक्टर अपनी पढ़ाई के दौरान एक वर्ष की व्यापक इंटर्नशिप से वास्तविक अनुभव प्राप्त करके सीखता है।

ऐसा ही एक उदाहरण भवन, सड़क, बाँध, पुल आदि निर्माण से जुड़ा हुआ लेते हैं। सामान्यत: यदि हम कोई भवन का निर्माण करते हैं, तो निर्माण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व इंजीनियर की मदद लेते हैं। जिस भूमि पर भवन निर्माण होना है, उसका क्षेत्रफल, भूमि की मिट्टी का प्रकार आदि की जानकारी देते हुए

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110016

इंजीनियर से भवन की ड्राइंग बनवाने के साथ-साथ अनुमानित भवन निर्माण सामग्री, बजट, समय आदि पूछते हैं। क्योंकि कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति घर (भवन) बनवाता है, तो वह अपने जीवन के कठिन परिश्रम की गाढ़ी कमाई (पूँजी) उसमें लगा देता है और बड़े अरमान से सुखी एवं शांति जीवनयापन के लक्ष्य को लेकर घर (भवन) बनवाता है। इस स्थिति में घर (भवन निर्माण) बनवाने वाले व्यक्ति का एकमात्र भरोसेमंद पेशेवर व्यक्ति इंजीनियर होता है। जो उसे घर (भवन) निर्माण से पूर्व तथा भवन निर्माण कार्य पूर्ण होने तक मदद करता है। यहाँ पर भी हमने इंजीनियर की बात की है, जो अपनी पढ़ाई के दौरान पेशेवर इंजीनियर बनने हेतु छह माह की व्यापक इंटर्नशिप करके सीखता है।

यहाँ पर उदाहरण के तौर पर दो पेशेवर व्यक्तियों डॉक्टर एवं इंजीनियर का वर्णन किया गया है। डॉक्टर एवं इंजीनियर के प्रति एक आम व्यक्ति की अपेक्षा रहती है कि वे हमें कुशल एवं पेशेवर मार्गदर्शन करेंगे। इसी प्रकार, हम अपने दैनिक जीवन में अनेक कुशल एवं पेशेवर व्यक्तियों के संपर्क में आते हैं। जिनमें शिक्षक भी शामिल हैं।

आज की विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में कुशल एवं योग्य पेशेवर शिक्षकों की नितांत आवश्यकता है। वैसे पेशेवर शिक्षकों की तैयारी को लेकर शिक्षा आयोग (1966) ने चिंता व्यक्त की थी।

आयोग ने कहा था कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों की पेशेवर शिक्षा के ठोस कार्यक्रमों की आवश्यकता है। आज के दौर में शिक्षा के नवीन एवं गतिशील तरीकों की आवश्यकता है। प्रभावी पेशेवर शिक्षा तभी संभव होगी, जब शिक्षक अपने शिक्षण में क्रांति लाना शुरू करें, जो भविष्य में उनके पेशेवर विकास की नींव होगी। इस प्रकार प्रथम दृष्टया, शिक्षा के विकास में शिक्षक शिक्षा संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। साथ ही, आयोग ने व्यापक इंटर्नशिप कार्यक्रम के साथ समन्वित कोर्स की बात कही तथा कहा कि प्रत्येक सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा संस्थान के साथ एक स्कूल होना चाहिए। जो प्रयोगशाला की तरह होगा, जिसमें विद्यार्थी-शिक्षकों को अपने विचारों एवं अपनी क्षमताओं तथा कौशलों में निखार लाने का अवसर मिलेगा।

प्रथम राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा आयोग—1983 ने शिक्षकों की शिक्षा के लिए अनुशंसा की थी कि किसी भी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में एक अच्छा शिक्षक बनने के लिए विद्यार्थी-शिक्षक को आधारभूत कौशलों एवं क्षमताओं को अर्जित करने की योग्यता होनी चाहिए, जैसे— विद्यार्थियों की प्रबल क्षमताओं का ध्यान रखते हुए कक्षा प्रबंधन की क्षमता, तार्किक एवं स्पष्ट विचारों का संप्रेषण, शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए उपलब्ध तकनीकी की उपयोगिता, कक्षा के बाहर के शैक्षिक अनुभवों से शिक्षित करना, समुदाय के साथ काम करना सीखना और विद्यार्थियों की मदद करना आदि। इसके साथ ही, शिक्षक शिक्षा के लिए विद्यार्थी-शिक्षकों का चयन करने हेतु निम्न घटकों का ध्यान रखने का सुझाव भी दिया —

- शारीरिक रूप से स्वस्थ हो;
- भाषिक योग्यता एवं संप्रेषण कौशल;
- सामान्य मानसिक योग्यता;

- सामान्य रूप से संसार की जानकारी हो;
- जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण हो; तथा
- अच्छे मानवीय संबंध विकसित करने की क्षमता।

आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि शिक्षकों की भूमिका से संबंधित विभिन्न कौशलों को सीखना, जिसमें शैक्षिक तकनीकी एवं सॉफ़्टवेयर तैयार करना भी है। विद्यार्थी-शिक्षकों को, कौशलों के उपयोग में दक्ष होना चाहिए तथा सहपाठियों में भी यह क्षमता विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए। विशेषकर, शैक्षिक तकनीकी (ICTs) के हार्डवेयरों के रखरखाव में दक्ष होना चाहिए तथा उन्हें सॉफ़्टवेयरों के लिए उपलब्ध स्रोतों की जानकारी भी होनी चाहिए। शिक्षा संस्थानों को उनके विद्यार्थी-शिक्षकों को पाठ्य-सहगामी गतिविधियों की योजना एवं संगठन के कौशल विकसित करने वाली कार्यशालाएँ आयोजित करनी चाहिए या विद्यार्थी-शिक्षकों को कार्यशालाओं में सहभागिता करने के लिए भेजना चाहिए। विद्यार्थी-शिक्षकों की शैक्षिक/पेशेवर तैयारी के लिए जैसे — शिक्षणशास्त्र, कौशलों का विकास जिसमें कहानी-कथन, पठन, श्यामपट्ट पर लिखना, नयी तकनीकी, जैसे — कंप्यूटर, एल. सी. डी., दृश्य-श्रृव्य उपकरण, मॉडल, ऑनलाइन शिक्षण-अधिगम सामग्री आदि का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। कला, संगीत, नृत्य एवं क्राफ़्ट पर भी अनिवार्य रूप से ध्यान देने तथा भाषा एवं संप्रेषण में विशेष दक्षता तथा मूल्यों पर पर्याप्त ज़ोर दिए जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति — 1986 पर पुनर्विचार समिति — 1990 ने शिक्षकों को तैयार करने के अनेक सुझाव दिए। जिनमें प्रमुख रूप से विद्यार्थी-शिक्षकों में शिक्षा के क्रियात्मक कौशलों एवं ज्ञानात्मक तथा भावात्मक पक्ष के सभी पहलुओं का ज्ञान प्रदान करने की क्षमता विकसित करना तथा स्तरीकृत समाज में शिक्षा की भूमिका की समझ तथा इस भूमिका का क्रियात्मक अर्थ प्रदान करने की योग्यता विकसित करना, दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी-शिक्षकों में निम्नलिखित व्यक्तिगत लक्षण भी होने चाहिए —

- स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने एवं सोचने की योग्यता;
- प्रचलन के विरुद्ध या लोकप्रिय मतानुसार कार्य करने की योग्यता;
- उत्प्रेरक एवं समझदार लोगों के साथ कार्य करने की योग्यता;
- समझ एवं अनुभव के आधार पर नेतृत्व करने की क्षमता;
- सृजनात्मकता एवं स्थिर क्रिया के लिए योग्यता;
- मानवीय एवं वित्तीय संसाधनों को संगठित करने की योग्यता;
- समाज एवं शासन के विभिन्न विभागों के साथ कार्य करने की योग्यता;
- उपलब्धि के लिए उच्च अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताएँ होना;
- उपलब्धि की इच्छा एवं प्रतिकूल स्थितियों में कार्य करने की योग्यता; तथा
- उत्तरदायित्व स्वीकारने एवं ज़िम्मेदारियों को समझने की इच्छाशक्ति तथा उच्च अंतर्वैयक्तिक कौशल।

अतः शिक्षा आयोग, प्रथम राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा आयोग तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सुझावों को विद्यालयी पाठ्यचर्या में लाते हुए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* में शिक्षकों के लिए आवश्यक तैयारी हेतु जो सुझाव दिए गए, वे इस प्रकार हैं —

- शिक्षकों की ऐसी तैयारी ज़रूरी है कि वे विद्यार्थियों का ध्यान रख सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।
- सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में विद्यार्थियों को समझ सकें।
- ग्रहणशील और निरंतर सीखने वाले हों।
- शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता की खोज के रूप में देखें तथा ज्ञान निर्माण को मननशील अधिगम की लगातार उभरती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर, साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।
- समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और बेहतर विश्व के लिए काम करें।
- उत्पादक कार्य के महत्व को समझें तथा कक्षा के बाहर और अंदर व्यावहारिक अनुभव देने के लिए कार्य को शिक्षण का माध्यम बनाएँ।
- पाठ्यचर्या की रूपरेखा, उसके नीतिगत निहितार्थ एवं पाठों का विश्लेषण करें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 की मूल भावना को विद्यालय की वास्तविक परिस्थितियों में कार्यान्वित करने के लिए कानूनी रूप से अर्थात् *शिक्षा के अधिकार अधिनियम — 2009* में शिक्षकों से यह अपेक्षा की गई है कि उन्हें विद्यालय में अपनी उपस्थिति और नियमितता बनाए रखनी होगी; पूरी पाठ्यचर्या को निर्धारित समय में पूरा करना होगा; प्रत्येक बच्चे की अधिगम योग्यता का आकलन करना होगा और उसी के अनुसार आवश्यक निर्देश देने होंगे अर्थात् शिक्षण-अधिगम करना होगा; शिक्षक को अभिभावकों से नियमित बैठकें करनी होंगी और अभिभावकों को उनके बच्चों की उपस्थिति में नियमितता, सीखने की योग्यता, सीखने में हुई प्रगति तथा बच्चे के बारे में कोई भी अन्य सार्थक सूचना हो, उससे अवगत कराना होगा। इसी बात का ध्यान रखते हुए *शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2009* (एन.सी.एफ.टी.ई.) में भी यह कहा गया है कि डी.एल.एड. के दो वर्ष के कार्यक्रम में प्रत्येक सप्ताह में चार दिन तथा न्यूनतम 6 से 10 सप्ताह का इंटर्नशिप कार्यक्रम होना चाहिए।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009 एवं *शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2009* के कार्यान्वयन के पश्चात् भी शिक्षक शिक्षा की दयनीय स्थिति में सुधार नहीं हुआ। ऐसे में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिक्षक शिक्षा की वर्तमान स्थिति का आकलन करने के लिए जस्टिस जे. एस. वर्मा की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया। जस्टिस वर्मा आयोग (2012) ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि शिक्षक शिक्षा के वर्तमान में चलने वाले प्रमुख कोर्सों में पारंपरिक ढंग से ज्ञान का कुछ अंश ही शामिल किया जाता है, जो न तो शिक्षा के बड़े लक्ष्यों और विषय को ज्ञान से जोड़ते हैं और न ही कक्षा-कक्ष की वास्तविक स्थिति से।

रिपोर्ट में परंपरागत शिक्षक शिक्षा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वर्तमान शिक्षक शिक्षा प्रोग्राम विद्यार्थी-शिक्षक को कक्षा-कक्ष की वास्तविक स्थिति से नहीं जोड़ते। जस्टिस वर्मा आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर भारत सरकार द्वारा *एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन — 2014* के माध्यम से शिक्षक शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सराहनीय प्रयास किया गया। जिसमें विशेषकर इंटर्नशिप की अवधि 20 सप्ताह (6 माह) करना एक महत्वपूर्ण कदम है। देश भर के तमाम शिक्षक शिक्षा संस्थानों के लिए *एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन — 2014* के अनुसार इंटर्नशिप कराना अनिवार्य हो गया है। लेकिन आए दिन समाचार-पत्रों में खबरें आ रही हैं कि शिक्षक शिक्षा संस्थान इंटर्नशिप की अवधि को एक समस्या के तौर पर देख रहे हैं तथा इस क्रांतिकारी परिवर्तन के प्रति विरोधी स्वर उभरने लगे हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न उठना लाज़मी है कि हम एक तरफ़ तो पेशेवर एवं कुशल डॉक्टर एवं इंजीनियर चाहते हैं, तो पेशेवर शिक्षक क्यों नहीं? सामान्यत: यह कहा जाता है कि एक अकुशल डॉक्टर द्वारा एक मरीज़ का इलाज करने से उस मरीज़ का नुकसान होगा। एक अकुशल इंजीनियर द्वारा भवन निर्माण के दौरान भ्रष्टाचार करने पर उस भवन का नुकसान होगा। परंतु यदि एक अकुशल शिक्षक बच्चों को पढ़ाएगा तो कई पीढ़ियों का अर्थात् समाज का नुकसान होगा।

जब यह सभी बातें समाज के सभी जागरूक लोग जानते हैं, फिर भी समाज विशेषकर देश भर के तमाम शिक्षक शिक्षा संस्थान एवं प्रशासन इंटर्नशिप के प्रति गंभीर क्यों नहीं है? शिक्षक शिक्षा में उपाधि या डिप्लोमा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी-शिक्षक गंभीर रूप से इंटर्नशिप क्यों नहीं करना चाहते हैं? जिन विद्यालयों में इंटर्नशिप होती है, उन विद्यालयों के प्रमुख एवं शिक्षक इंटर्नशिप के प्रभावी कार्यान्वयन में योगदान क्यों नहीं देते? इंटर्नशिप के दौरान शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा विद्यार्थी-शिक्षकों का प्रभावी अवलोकन एवं फ़ीडबैक क्यों नहीं दिया जाता? इंटर्नशिप के पश्चात् प्रभावी आकलन क्यों नहीं किया जाता? आदि अनेक प्रकार के प्रश्न हैं जो इंटर्नशिप के आयोजन एवं प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सोचने को मज़बूर करते हैं।

इसके पश्चात् भी हम कहते हैं कि भारत के भविष्य का निर्माण विद्यालयों में हो रहा है। जिसमें शिक्षक एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लेकिन उस शिक्षक को कुशल एवं योग्य अर्थात् पेशेवर रूप से तैयार करने वाले शिक्षक शिक्षा संस्थान अभी भी गंभीर नहीं हैं। ऐसी स्थिति में प्राय: हम देखते हैं कि शिक्षक, समाज में अपना सम्मान खोता जा रहा है एवं विद्यालय में अपनी भूमिका का सही मायने में निर्वहन नहीं कर पा रहा है।

ऐसे में *एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन — 2014* का शिक्षक शिक्षा और पेशेवर शिक्षकों को तैयार करने का दर्शन प्रासंगिक लगता है। इंटर्नशिप के बारे में शिक्षा आयोग (1966) ने भी कहा था कि विद्यार्थी-शिक्षकों को व्यापक इंटर्नशिप की आवश्यकता है, जो विद्यालय के समस्त कार्यों का पूर्णता में अवलोकन करने योग्य हो तथा शिक्षकों की कक्षा एवं कक्षा के बाहर की सभी महत्वपूर्ण गतिविधियों में सक्रिय रूप से सहभागिता करे।

शिक्षक शिक्षा के प्रोग्रामों में विद्यालय इंटर्नशिप की अवधि 20 सप्ताह निर्धारित की गई है। जिसका लक्ष्य विद्यार्थी-शिक्षकों को अर्थपूर्ण एवं पूर्णता (अर्थात् विद्यालय की पाठ्यचर्यात्मक गतिविधियों के साथ-साथ मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक संसाधनों का शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव का आलोचनात्मक चिंतन विकसित करना है) में विद्यालय एवं विद्यार्थियों के साथ जोड़ना है। इस प्रक्रिया से विद्यार्थी-शिक्षकों में, ज्ञान के व्यापक स्वरूप का भंडार (अर्थात् सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में विषय-वस्तु एवं अनुभव से प्राप्त ज्ञान का स्वरूप), पेशागत क्षमताओं, शिक्षक वार्तालाप, संवेदनशीलता तथा कौशलों का विकास होगा।

इंटर्नशिप के दौरान विद्यार्थी-शिक्षक एक नियमित शिक्षक की भाँति विद्यालय में कार्य करेगा। कक्षा में पढ़ाने से पहले, वह विद्यालय को पूर्णता में समझने के लिए विद्यालय एवं कक्षाओं का एक सप्ताह तक अवलोकन करेगा तथा वह विद्यालय की सभी गतिविधियों, जैसे — योजना, शिक्षण एवं आकलन तथा विद्यालयी शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं समुदाय के सदस्यों के साथ अंतर्क्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेगा। जिसमें वह विद्यालय का दर्शन एवं लक्ष्य, संगठन एवं प्रबंधन; शिक्षक का विद्यालयी जीवन; विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक एवं संवेदनशील विकास की आवश्यकताएँ; पाठ्यचर्या के घटकों एवं उनका शिक्षण; गुणवत्ता; शिक्षण तथा शिक्षण-अधिगम के आकलन का अवलोकन कर समझेगा।

इस प्रकार इंटर्नशिप में विद्यार्थी-शिक्षकों को अपने कोर्स के दौरान 20 सप्ताह तक (लगभग 6 माह) फ़ील्ड में अर्थात् शहरी, ग्रामीण, जनजातीय, अल्पसंख्यक, आवासीय, गैर-आवासीय, सामान्य, विशिष्ट, आदर्श, बालक, बालिका आदि प्रकार के विद्यालयों में जाकर विद्यार्थियों, शिक्षकों, विद्यालय प्रमुखों, विद्यालय प्रबंध समिति के सदस्यों, अभिभावकों, विद्यालय के गैर-अकादमिक सदस्यों आदि के साथ अंतर्क्रिया करने का अवसर दिया जाता है। साथ ही, विद्यालयी वातावरण, विद्यालय में विभिन्न दस्तावेज़ों का रखरखाव तथा उनका अद्यतन (Updates), विद्यालय एवं समुदाय में संबंध, विद्यालय के भवन एवं समस्त भौतिक सुविधाओं तथा प्रयोगशालाओं, पुस्तकालय आदि का अध्ययन करने का मौका मिलता है। वहीं सैद्धांतिक विषयों के ज्ञान का व्यावहारिक रूप में उपयोग करने हेतु केस अध्ययन, क्रियात्मक शोध, किसी विषय या समस्या आधारित परियोजना कार्य आदि करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

इंटर्नशिप के दौरान विद्यार्थी-शिक्षकों को कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के साथ अंतर्क्रिया करने तथा शिक्षकों द्वारा कराई जा रही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अवलोकन कर सीखने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए अपनाई जा रही आकलन प्रक्रिया, विद्यार्थियों के व्यवहारों, विद्यार्थी-शिक्षक संबंध, कमज़ोर एवं प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए शिक्षण-अधिगम व्यवस्था, विशेष आवश्यकता समूह के विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था तथा उनके प्रति अन्य विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का नज़रिया, शिक्षण-अधिगम में आई.सी.टी. का समुचित उपयोग आदि से रूबरू

होकर सीखने का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। इसी कड़ी में साथी विद्यार्थी की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अवलोकन करने तथा उन्हें समुचित फ़ीडबैक देने एवं स्वयं की कमियों पर फ़ीडबैक प्राप्त कर स्वीकार करने की क्षमता का विकास भी होता है।

विद्यार्थी-शिक्षकों को इंटर्नशिप के दौरान शिक्षण की रचनात्मक विधियों का उपयोग करने से स्व-अध्ययन तथा चर्चा करने का अवसर मिलता है। इसके अलावा, विद्यार्थी-शिक्षकों को स्व-आकलन कर अपनी कमियों में सुधार करने का अवसर, अपने मज़बूत पक्षों को पहचानने तथा साथी विद्यार्थी-शिक्षकों को लाभान्वित करने का अवसर रिफ़्लैक्टीव जर्नल (मननशील लेख) के माध्यम से मिलता है। रिफ़्लैक्टीव जर्नल में विद्यार्थी-शिक्षक विद्यालय में होने वाले प्रत्येक क्रियाकलापों के साथ-साथ स्वयं द्वारा किए गए कार्यों का उल्लेख करता है। इसमें वह स्वयं के कमज़ोर तथा मज़बूत पक्षों का सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन करता है। इस प्रकार विद्यार्थी-शिक्षक स्वयं द्वारा लिखे गए रिफ़्लैक्टीव जर्नल का खुद समीक्षात्मक अवलोकन कर फ़ीडबैक प्राप्त कर स्वयं की क्षमताओं का विकास करता है। इसके अतिरिक्त इन रिफ़्लैक्टीव जर्नलों के आधार पर वह अपने साथी विद्यार्थी-शिक्षकों के बीच विद्यालयी क्रियाकलापों तथा शिक्षक-अधिगम प्रक्रिया पर चर्चा भी करता है। वहीं इंटर्नशिप पूर्ण होने के पश्चात् विद्यार्थी-शिक्षकों को अपने शिक्षक शिक्षा संस्थान में आयोजित सेमीनार में रिफ़्लैक्टीव जर्नल के अनुभवों के आधार पर अपने अनुभव बाँटने (शेयर करने) का भी मौका मिलता है। इस प्रकार विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा रिफ़्लैक्टीव जर्नल लिखने से उनमें लेखन कौशल का विकास तो होता ही है, साथ ही स्वयं को पहचानने तथा अपनी कमियों को स्वीकार कर सुधारने एवं साथी विद्यार्थी-शिक्षकों के साथ चर्चा करने पर आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

अत: *एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन — 2014* पर आधारित इंटर्नशिप विद्यार्थी-शिक्षकों को वास्तविक फ़ील्ड (विद्यालयों) में कार्य करने के लिए पेशेवर शिक्षक बनाने में सक्षम है। अब भारत सरकार के इस प्रयास को प्रशासन एवं समाज द्वारा या कहें कि शिक्षक शिक्षा संस्थानों तथा विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा प्रभावी कार्यान्वयन करने की महती आवश्यकता है। इस प्रकार की व्यापक एवं फलदायी इंटर्नशिप तभी संभव हो सकेगी जब शिक्षक शिक्षा संस्थान इंटर्नशिप पर सूक्ष्म दृष्टिकोण से व्यापक योजना बनाकर, संस्थान के संकाय सदस्यों की बेहतर पेशेवर तैयारी तथा इंटर्नशिप हेतु चयनित विद्यालयों के प्रमुखों एवं मेंटोर के रूप में योगदान देने वाले शिक्षकों को सार्थक प्रशिक्षण देकर शिक्षक शिक्षण संस्थान एवं विद्यालय के बीच व्यवस्थित सहयोग एवं समन्वय के साथ संयुक्त ज़िम्मेदारी निभाते हुए इंटर्नशिप संचालित करेंगे। इस कार्य के लिए राज्य सरकार को इंटर्नशिप हेतु चयनित विद्यालयों को विशेष पहचान देने के साथ-साथ आवश्यक उपकरणों के क्रय एवं प्रबंधन तथा विद्यार्थी-शिक्षकों को वज़ीफ़ा व अवलोकन करने वाले शिक्षक पर्यवेक्षकों हेतु मानदेय के लिए पर्याप्त मात्रा में अनुदान राशि प्रदान करनी चाहिए (शिक्षा आयोग; 1966)।

यदि वास्तविकता में इस इंटर्नशिप को अमल में लाया जाए तो लेखक को पूरा विश्वास है कि शिक्षक, समाज में अपने कम होते सम्मान एवं पहचान को पुन: स्थापित कर लेगा तथा दुनिया में हम बुलंद आवाज़ में कह सकेंगे कि 'वास्तव में, भारत के भविष्य का निर्माण विद्यालयों में हो रहा है' क्योंकि एक दृष्टिकोण ही प्रगति में बाधक या साधक बन सकता है। अत: यहाँ पर समापन के साथ किसी शायर की बात कहना उचित ही होगा कि —

सोच को बदलों सितारे बदल जाएँगे,
नज़र को बदलो नज़ारे बदल जाएँगे।
कश्तियाँ बदलने की ज़रूरत नहीं,
दिशाओं को बदलो किनारे बदल जाएँगे॥

संदर्भ

एन.सी.टी.ई. 2009. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फ़ॉर टीचर एजुकेशन — टुवार्ड्स प्रीपेरिंग प्रोफ़ेशनल एंड ह्युमेन टीचर्स*. नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली.

———. 2014. *रिकोग्निशन नॉर्मस एंड प्रोसिजर्स — रेग्यूलेशन 2014*. नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली.

———. 2015. *करिकुलम फ्रेमवर्क ऑफ़ डिप्लोमा इन एलीमेंट्री टीचर एजुकेशन प्रोग्राम*. नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली. http://www.ncte- india.org/ Curriculum%20Framework/ D.El.Ed%20 Curriculum.pdf

———. 2015. *करिकुलम फ्रेमवर्क — टू-इयर बी.एड. प्रोग्राम*. नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली. http://www.ncte-india.org/Curriculum%20Framework/B.Ed%20Curriculum.pdf

भारत का राजपत्र. 2009. *निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009*. संख्या-39. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 2012. विज़न ऑफ़ टीचर एजुकेशन इन इंडिया — क्वालिटी एंड रेग्यूलेटरी पर्सपेक्टिव — रिपोर्ट ऑफ़ द हाई पावर्ड कमीशन ऑन टीचर एजुकेशन कंस्टीट्यूटिड बाई ऑनेबल सुप्रीम कोर्ट ऑफ़ इंडिया. वॉल्यूम 1. डिपार्टमेंट ऑफ़ स्कूल एजुकेशन एंड लिटरेसी एंड नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 1970. एजुकेशन एंड नेशनल डिवेलपमेंट — रिपोर्ट ऑफ़ द एजुकेशन कमीशन (1964–66). *जनरल प्रोब्लम्स*. वॉल्यूम 1. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

———. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

———. 2012. *सिलेबस फ़ॉर टू-इयर बैचलर ऑफ़ एजुकेशन*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

https://www.aiims.edu/aiims/academic/aiims-syllabus/MBBS-schedule.pdf

https://www.aicte-india.org/downloads/eci.pdf

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में माध्यमिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम
स्थिति, मुद्दे और समस्याएँ

शबनम*
मधुलिका पटेल**
सरोज पांडे***

अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पूरे देश में एवं विशेषकर पूर्वोत्तर क्षेत्र में चिंता का एक विषय बनी हुई है। प्रारंभिक समीक्षा में यह पाया गया कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों के व्यापक अध्ययन के लिए ऐसी सूचनाएँ बहुत कम उपलब्ध हैं जो पाठ्यचर्या तथा इन संस्थानों द्वारा उभरते परिदृश्यों के समरूप पाठ्यचर्या संशोधन के प्रयासों के बारे में सार्थक जानकारी प्रदान कर सकें। व्यापक सूचना का अभाव इस क्षेत्र की अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के प्रबंधन में एक बाधा है। यह शोध पत्र पाठ्यचर्या की पृष्ठभूमि पर केंद्रित है तथा अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के आयोजन में अनुभव किए गए अवरोधों के साथ-साथ पूर्वोत्तर राज्यों में विद्यमान सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा के शोध को दर्शाता है। इसमें पूर्वोत्तर क्षेत्रों में अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या एवं कार्यान्वयन में वांछित परिवर्तन लाने के लिए उपयुक्त सुझाव दिए गए हैं। इस शोध पत्र में सम्मिलित जानकारी नीति-निर्धारकों द्वारा उपयुक्त सुधारों के लिए उपयोग में लाई जा सकती है।

प्रस्तावना

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के लागू होने के बाद विद्यालयी शिक्षा प्रणाली में शिक्षण-अधिगम की विषय-वस्तु और शैक्षणिक उपागम में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005, अध्यापकों से यह माँग और अपेक्षा करती है कि वे शिक्षण-अधिगम के परंपरागत शिक्षण-अधिगम उपागम को पुनर्निर्मित करके नयी विधियाँ और उपागम अपनाएँ। हालाँकि, शिक्षा प्रक्रिया शिक्षाविदों, अध्यापकों और विद्यार्थियों से जुड़ी है। विद्यार्थी क्या और कैसे सीखते हैं, यह उनके अध्यापक की भूमिका पर निर्भर होता है। अतः अध्यापक की भूमिका मुख्यतः अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम पर

* *जूनियर प्रोजेक्ट फ़ेलो*, अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110016
** *प्रोफ़ेसर*, अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110016
*** *प्रोफ़ेसर*, शिक्षा अध्ययनशाला, इग्नू, मैदान गढ़ी, नयी दिल्ली 110068

Chapter 1.indd 5 11/8/2018 12:07:49 PM

आधारित होती है, जो उनके ज्ञान को आकार देने तथा तर्कसंगत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संदर्भ में, अध्यापक शिक्षा संस्थान विद्यालय स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने में एक बड़ी भूमिका निभाते हैं।

शिक्षा और अध्यापक शिक्षा में यह आपसी संबंध अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या के साथ-साथ विद्यालय शिक्षा पाठ्यचर्या में परिवर्तन की माँग करता है ताकि नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन और अपेक्षित परिणाम की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता चिंता का विषय बनी हुई है जो कि भौगोलिक पृथकता, उचित संपर्क की कमी, क्षेत्रीय हिंसा और देश के शेष भाग से संचार में कमी और अपर्याप्त ढाँचागत सुविधाओं जैसी अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। विद्यालय शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सेवारत अप्रशिक्षित और अल्प योग्यता प्राप्त अध्यापकों के कारण यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा संस्थानों और अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या की शुरुआती समीक्षा उजागर करती है कि अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम के कुल 73 माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थानों में से अधिकतर (64) निजी संस्थान हैं। पाठ्यचर्या तथा उभरते परिदृश्यों के अनुरूप इन संस्थानों द्वारा पाठ्यचर्या में संशोधन, विद्यालय अनुभव, कार्यक्रम की प्रकृति, अपनाई गई मूल्यांकन प्रणाली, सुधार हेतु किए गए प्रयत्नों की गुणवत्ता तथा इस क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा संस्थानों द्वारा अनुभव किए गए अवरोधों के बारे में सार्थक सूचना प्रदान करने वाले बहुत कम शोध अध्ययन हुए हैं। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, (एन.सी.टी.ई.) ने सन् 1999 में अध्यापक शिक्षा संस्थानों पर एक सर्वेक्षण किया तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा सन् 2006 में कई राज्यों के अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का बहु-केंद्रित शोध अध्ययन किया गया। परंतु इन अध्ययनों में इस क्षेत्र के सभी राज्यों और संघ प्रशासित राज्यों को छोड़कर केवल असम राज्य के कुछ ही संस्थानों को सम्मिलित किया गया। इस प्रकार पूर्वोत्तर क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण सुधार की योजना बनाने में व्यापक और सुनियोजित सूचना की कमी एक बाधा है।

यह शोध पत्र पाठ्यचर्या की पृष्ठभूमि पर केंद्रित है तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र में सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के संचालन में अनुभव किए गए अवरोधों सहित पूर्वोत्तर राज्यों में माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों के लिए विद्यमान सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा के शोध का प्रयास करता है। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन तथा पाठ्यचर्या में वांछित परिवर्तन लाने के लिए उपयुक्त सुझाव दिए गए हैं। इस शोध पत्र में दिए गए सुझाव नीति-निर्धारकों द्वारा उपयुक्त सुधारों के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

पाठ्यचर्या वह माध्यम है जो सामाजिक, शैक्षिक विचारधाराओं को शिक्षण प्रक्रिया और शिक्षण परिणामों में बदलता है। अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या

के क्षेत्र में हुए अध्ययन हमें यह जानकारी प्रदान करते हैं कि कार्यक्षेत्र के स्तर पर क्या कार्य हो रहा है? साथ ही अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में आवश्यक आदान-प्रदान की जानकारी भी देते हैं। यह विशिष्ट रूप से अध्यापकों की आवश्यकताओं और सामान्यतः बालकों की शिक्षा के लिए प्रासंगिक होता है। हालाँकि, देश में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या का अध्ययन करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। देश में पाठ्यचर्या के अध्ययन की स्थिति को दर्शाते हुए दास और जंगीरा (1987) को यह बात आश्चर्यजनक लगी कि पाठ्यचर्या, जो अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य तत्व है, उसे शोधकों द्वारा उचित महत्व नहीं दिया जाता। उन्होंने सुझाया कि देश में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या को संशोधित करने के लिए अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या का विकास, उसका आदान-प्रदान और मूल्यांकन के क्षेत्र में शोध करने की आवश्यकता है। कोहली (1974) द्वारा पंजाब में बी.एड. स्तर पर उद्देश्यों की प्राप्ति में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया गया तथा पाया गया कि शोधकों का अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या के प्रति ध्यान आकर्षित हुआ है। गोयल और चोपड़ा (1979) ने यह पाया कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम विद्यालय पाठ्यचर्या में किए गए संशोधनों को दर्शाने में असफल रहे हैं। उदाहरण के तौर पर शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कला शिक्षा को विद्यालय पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग माना जाता है, परंतु अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में इन्हें शामिल नहीं किया गया।

वालिया (1992) ने पाया कि बी.एड. कोर्स के पाठ्यक्रम की प्रकृति सैद्धांतिक थी, इंटर्नशिप प्रदान नहीं कि गई और एक वर्ष की अवधि अपर्याप्त है। कुमार (1996) ने दक्षिण भारतीय विश्वविद्यालयों की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या का विश्लेषण किया। यह शोध अध्ययन दर्शाता है कि अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के संबंध में विश्वविद्यालयों में बहुत विभिन्नता थी और इसमें वर्षों तक कोई संशोधन नहीं हुआ। भारत में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में शैक्षिक मनोविज्ञान पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए पांडा (1997) ने विषय-वस्तु की अप्रासंगिकता, अलगाव और अनियमित प्रस्तुति को दर्शाया। इस तरह के 38 शोध अध्ययनों की सिंह और मल्होत्रा (1991) द्वारा शिक्षा में शोध के चतुर्थ सर्वेक्षण में विश्लेषण किया गया। अधिकतर ये अध्ययन अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्यचर्या का मूल्यांकन, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम से जुड़े अध्यापकों, शिक्षाविदों, विद्यालय प्रमुखों और अन्य कार्मिकों की राय पर आधारित थे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रमों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अनेक अध्यापक शिक्षा संस्थानों का सर्वेक्षण किया गया। कुमार और अन्य (1986) ने प्रेरक कारकों का पता लगाने का प्रयास किया, जिसके कारण अध्यापकों ने बी.एड. डिग्री के लिए एन.सी.ई.आर.टी. के ग्रीष्मकालीन विद्यालय सह-पत्राचार पाठ्यक्रमों में प्रवेश लिया। इन शोध अध्ययनों की गहन समीक्षा अध्यापक शिक्षा संस्थानों में समुचित अवसंरचना, वित्तीय और जन संसाधनों की

कमी तथा विभिन्न स्तरों पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या की अप्रासंगिकता की ओर ध्यान दिलाती है।

यादव (2011) ने भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान और बांग्लादेश में माध्यमिक स्तर पर सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन किया, उन्होंने चारों देशों के कुछ संस्थानों के प्रधानाचार्यों, शिक्षाविदों और विद्यार्थी-शिक्षकों के लिए तैयार की गई प्रश्नावली के माध्यम से आँकड़े एकत्रित किए। इसके अतरिक्त, भारत में व्यक्तिगत बातचीत और साक्षात्कार द्वारा भी आँकडे एकत्रित किए गए। इस शोध अध्ययन में पाया गया कि इन देशों में बी.एड. कार्यक्रम में निर्धारित अनिवार्य सैद्धांतिक पेपर लगभग सामान्य थे। कंप्यूटर अनुप्रयोग, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, कार्यानुभव, शोध परियोजना आदि अभ्यास कार्य के अंतर्गत निर्धारित किए गए थे। कुछ संस्थानों में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया था। विद्यालय अनुभव की न्यूनतम अवधि भारत, श्रीलंका और बांग्लादेश में 35 से 60 दिन की थी, जबकि पाकिस्तान में यह अवधि अधिकतम 90 दिन थी। व्याख्यान विधि, प्रदर्शन विधि, समूह चर्चा का अधिकतर प्रयोग प्रशिक्षण आदान-प्रदान के दौरान किया जाता था। अध्यापक, शिक्षाविदों तथा विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा सुझाव दिया गया कि बी.एड. कार्यक्रम की अवधि एक वर्ष से बढ़ाकर कम-से-कम दो वर्ष कर देनी चाहिए। बी.एड. में दाखिले के लिए प्रवेश परीक्षा होनी चाहिए। अध्यापक शिक्षाविदों के व्यावसायिक विकास के लिए नियमित नीति होनी चाहिए। सिंह और मल्होत्रा (1991) ने पाया कि विद्यार्थी-शिक्षकों के दृष्टिकोण, जैसे — अध्यापक प्रभावशीलता, विद्यार्थी-शिक्षकों का हित, विद्यालयों की समस्या का समाधान, विद्यमान विद्यालयों की कार्य स्थिति आदि को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या के मूल्यांकन के लिए शायद ही कोई शोध अध्ययन किया गया हो। इसके अतिरिक्त, समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यचर्या की प्रासंगिकता, शिक्षा के उद्देश्य तथा विभिन्न राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं इत्यादि में सुझाए गए पाठ्यचर्या के उपयोग जैसे बिंदु, शोध के विषय नहीं माने गए। अत: अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में पाठ्यचर्या संशोधन के लिए शोध को आधार नहीं बनाया गया। वास्तव में, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए इसका विद्यालयी पाठ्यचर्या की आवश्यकताओं के साथ तालमेल बैठाया जाना चाहिए। हालाँकि, पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या के नवीनीकरण के लिए ऐसे शोध अध्ययनों का भी कभी उल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए इस शोध का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में सुधार के लिए शोध आधारित आँकड़े प्रदान करना है।

शोध के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं —

- पूर्वोत्तर क्षेत्र के विभिन्न राज्यों में बी.एड. स्तर की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या का अध्ययन करना।
- कोर्स संरचना और कोर्स विषय-वस्तु तथा वर्तमान संदर्भ में इसके औचित्य का विश्लेषण करना।

- इन राज्यों के विभिन्न संस्थानों में अनुसरण किए जा रहे विद्यालय अनुभव/शिक्षण अभ्यास कार्यक्रमों का विश्लेषण करना।
- विभिन्न राज्यों में इन संस्थानों द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों सहित अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों से जुड़े मामलों की पहचान/विश्लेषण करना।
- विभिन्न पूर्वोत्तर राज्यों में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के कार्यान्वयन और पाठ्यक्रम में वांछित परिवर्तन लाने के लिए उचित सुझाव देना।

प्रविधि

इस शोध अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि द्वारा प्रश्नावली के माध्यम से मात्रात्मक आँकड़े एकत्रित किए गए। पूर्वोत्तर राज्यों के माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थानों से, अध्यापक शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयामों, जैसे—प्रवेश मानदंड, कोर्स संरचना एवं अवधि, आदान-प्रदान उपागम, विद्यालय अनुभव कार्यक्रम, मूल्यांकन प्रक्रिया, संकाय सदस्यों की पेशेवर तैयारी, इन संस्थानों द्वारा किए गए शोध एवं नवाचार, ढाँचागत सुविधाएँ तथा वित्तीय एवं शैक्षणिक कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए संपर्क किया गया। इन राज्यों के संस्थानों में जाकर प्राप्त गुणात्मक आँकड़ों द्वारा मात्रात्मक आँकड़ों का सत्यापन किया गया। निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए गुणात्मक तथा मात्रात्मक विधियों द्वारा प्राप्त आँकड़ों को आपस में सत्यापन कर तथा उचित सांख्यिकीय तकनीकी द्वारा विश्लेषण किया गया।

अध्ययन की रूपरेखा

अध्ययन की रूपरेखा में विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण शामिल था, जो कुछ राज्यों के अध्यापक शिक्षा संस्थानों के गुणात्मक अध्ययनों से प्रभावी बना। इस अध्ययन का उद्देश्य पूर्वोत्तर क्षेत्र की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या का व्यापक विश्लेषण करना था। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र (एन.ई.आर.) में आठ राज्य हैं— अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा। इन क्षेत्रों के 10 विश्वविद्यालयों में बी.एड. कार्यक्रम संचालित किए गए हैं, जिनमें से तीन विश्वविद्यालय अर्थात् असम, गुवाहाटी और डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय केवल असम में स्थित हैं, जो कि इस क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य है। अन्य प्रत्येक राज्य में एक विश्वविद्यालय है। यह शोध अध्ययन चरणबद्ध तरीके से किया गया था, जिसका वर्णन निम्नलिखित है—

चरण 1—इस क्षेत्र के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनुसरण की जा रही अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या के विश्लेषण के लिए बी.एड. कोर्स प्रदान करने वाले सभी 10 विश्वविद्यालयों का बी.एड. पाठ्यक्रम प्राप्त किया गया।

चरण 2—द्वितीय चरण में अध्यापक शिक्षा संस्थानों तथा उनमें कार्यरत अध्यापक शिक्षाविदों की प्रोफ़ाइल बनाने एवं अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या के आदान-प्रदान के लिए उपलब्ध सुविधाओं के मात्रात्मक आँकड़े एकत्रित किए गए।

चरण 3—इस चरण में कुछ राज्यों के अध्यापक शिक्षा संस्थानों का दौरा किया गया तथा पहचाने गए चरों पर प्राचार्यों, अध्यापक शिक्षाविदों तथा

विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागाध्यक्षों से चर्चा की गई। कक्षा-कक्ष का अवलोकन किया गया तथा विद्यार्थी-शिक्षकों से उनकी अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या तथा इसके कार्यान्वयन पर चर्चा की गई।

आँकड़ों का विश्लेषण

इस शोध अध्ययन में आँकड़े संग्रहण करने के लिए गुणात्मक एवं मात्रात्मक, दोनों तकनीकों का प्रयोग किया गया। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण एवं व्याख्या के लिए निम्न विधि अपनाई गई —

- पूर्वोत्तर क्षेत्र के सभी 10 विश्वविद्यालयों द्वारा कार्यान्वित की जा रही अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या का विश्लेषण विषयों के अनुसार एवं प्रत्येक विषय में शामिल विषय-वस्तु, विद्यालय अनुभव कार्यक्रम तथा आंतरिक एवं बाह्य आकलन में भारांक इत्यादि के आधार पर किया गया।
- क्षेत्र के 467 अध्यापक शिक्षाविदों तथा 61 अध्यापक शिक्षा संस्थानों से प्रश्नावली द्वारा मात्रात्मक आँकड़े प्राप्त किए गए।
- अध्यापक शिक्षा संस्थानों के विभिन्न सदस्यों के साथ प्रत्यक्ष चर्चा कर गुणात्मक आँकड़े एकत्रित किए गए।

इस प्रकार, शोधकों द्वारा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का आपस में सत्यापन कर व्याख्या की गई।

परिणाम और चर्चा

यह शोध अध्ययन अग्रगामी प्रयास है जो न केवल पूर्वोत्तर क्षेत्र में अपनाए गए अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या से संबंधित व्यापक आँकड़े प्रस्तुत करता है, बल्कि यह शिक्षा प्रणाली में विभिन्न सहभागियों अर्थात् अध्यापक शिक्षा संस्थानों, अध्यापक शिक्षाविदों और विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा अनुभव की गई ज़मीनी वास्तविकताओं और कठिनाइयों का गुणात्मक विश्लेषण प्रदान करता है। अतः प्राप्त मात्रात्मक एवं गुणात्मक आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गए, वह इस प्रकार हैं —

1. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा समय-समय पर विकसित राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखाओं के प्रमुख क्षेत्रों को पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या विकास प्रकिया में शामिल नहीं किया गया, जबकि राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा वर्ष 2009 में विकसित अद्यतन अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखा पूर्वोत्तर राज्यों के साथ अभी भी पूरे देश में कार्यान्वित की जानी है। विभिन्न राज्यों की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु के विश्लेषण से पता चलता है कि पूर्व पाठ्यचर्या रूपरेखाओं की सिफ़ारिशें भी प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं हो पाई हैं। उदाहरण के लिए, सभी पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या को लचीला बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया ताकि यह बच्चों के जीवन, उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं तथा उनके समुदाय के अनुकूल हो। लचीलापन और प्रासंगिकता अध्यापक शिक्षा की सभी रूपरेखाओं का महत्वपूर्ण भाग रही है, परंतु पूर्वोत्तर क्षेत्र की पाठ्यचर्या में यह शामिल नहीं है। बी.एड. कार्यक्रम संचालित

करने वाले 10 विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु का विश्लेषण अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में स्थानीय/क्षेत्रीय मामलों और चिंताओं के प्रति पाठ्यक्रम विकासकर्ताओं की उदासीनता को दर्शाता है। पूर्वोत्तर क्षेत्र का सामाजिक ढाँचा अथवा इसकी विभिन्न जनजातियाँ, किशोर विद्यार्थियों के मामले और चिंताएँ, विद्रोह या नशे की समस्याएँ, राज्य में शिक्षा की स्थिति और विकास आदि जैसे किसी भी मामले को किसी भी विश्वविद्यालय ने पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास नहीं किया। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखाओं द्वारा दिए गए विस्तृत दिशा-निर्देश, जो कि विषय-वस्तु के विकास में मार्गदर्शी सिद्धांत हो सकते थे, परंतु विश्वविद्यालयों ने अपनी सुविधानुसार विषय-वस्तु शामिल कर ली है तथा स्थानीय मुद्दों और उनके राज्य विशेष की शिक्षा की चिंताओं पर केवल एक इकाई जोड़ी गई है, जो अध्यापकों को उनके राज्य में फैली नशे की लत, किशोरों के मध्य हिंसा और उपद्रव, एच.आई.वी. (एड्स) तथा युवाओं को व्यावसायिक एवं करियर मार्गदर्शन जैसी समस्याओं से निपटने के लिए तैयार करने के लिए बिलकुल पर्याप्त नहीं है।

2. पूर्वोत्तर राज्यों की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में निहित कोर्स संरचना तथा विषय-वस्तु के विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि क्षेत्र में अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में किए गए सुधार और परिवर्तन, माध्यमिक स्कूल अध्यापकों या राज्य की विशिष्ट संदर्भ आधारित आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने की बजाय अनियमित आधार पर किए गए हैं। विश्वविद्यालयों द्वारा वर्ष 1978 के अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखा की सिफ़ारिशों का आमतौर पर अनुसरण किया गया है तथा बाद के वर्षों में हुए परिवर्तन राष्ट्र स्तरीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखाओं के बजाय नज़दीक के विश्वविद्यालयों की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्याओं में परिवर्तनों से अधिक प्रभावित दिखाई दिए। अतः पूर्वोत्तर क्षेत्र के विभिन्न विश्वविद्यालयों की अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्याओं में समानता देखी जा सकती है। नागालैंड विश्वविद्यालय द्वारा 2012 के आधारभूत कोर्सों में शैक्षिक मनोविज्ञान, शैक्षिक प्रौद्योगिकी एवं मूल्यांकन तथा उभरते भारतीय समाज में शिक्षा को सम्मिलित किया गया। जिनका एन.सी.एफ.टी.ई.–2009 में कोई स्थान नहीं है, जबकि इसमें अधिक प्रयोजनमूलक प्रकृति की अलग कोर्स संरचना निर्धारित की गई है। शोधकों द्वारा विश्वविद्यालय के संकाय सदस्यों से चर्चा करने पर पाया गया कि वे एन.सी.एफ.टी.ई.–2009 और इसकी सिफ़ारिशों से अवगत नहीं थे।

3. विभिन्न मनोवैज्ञानिक विषयों के व्यावहारिक स्वरूप को उबारने, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और व्यक्तिगत विकास का विद्यार्थी के अधिगम पर पड़ने वाले प्रभाव तथा इन विकासात्मक विशेषताओं का अध्यापक द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में कैसे प्रयोग किया जाए? इन सब विषयों पर इन सभी विश्वविद्यालयों की विषय-वस्तु में बहुत कम ध्यान दिया गया था।

4. अध्यापक शिक्षा की सभी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में कक्षा-कक्ष में सार्थक शैक्षिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर बल दिया गया है। विशेषकर 1998 और 2009 की राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में कक्षा-कक्ष में दैनिक शिक्षण-अधिगम में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के समावेश पर ज़ोर दिया गया है। इसके बावजूद अध्यापक शिक्षा संस्थानों में समुचित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी सुविधाओं की कमी है, जिनमें मुख्यतः कंप्यूटरों की तथा जिन संस्थानों में सुविधा उपलब्ध है उनका अध्यापक शिक्षा संस्थानों में उपयुक्त प्रयोग नहीं किया जाता है। इसका मुख्य कारण कक्षा-कक्ष में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का व्याख्यान आधारित होना है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग न किए जाने के प्रमुख कारणों में तकनीकी जानकारी का अभाव (44.26%), सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी संसाधनों की अनुपलब्धता (36.06%) तथा अध्यापक शिक्षाविदो द्वारा स्वयं पहल (22.95%) न करना पाया गया।
5. वयस्क स्तर पर शिक्षण-अधिगम के मुख्य तत्वों में से एक तत्व संकाय सदस्यों तथा विद्यार्थियों, दोनों के द्वारा पुस्तकालय सुविधाओं का प्रयोग करना है। तथापि शोध अध्ययन के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि इन अध्यापक शिक्षा संस्थानों में कार्यरत अधिकांश अध्यापक शिक्षाविद् अपने संस्थानों में उपलब्ध पुस्तकालय सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हैं। इन संस्थानों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने पर पाया गया कि इन संस्थानों के पुस्तकालयों में नवीनतम पुस्तकों, जर्नल, विश्वकोश तथा अन्य शैक्षिक पत्रिकाओं का अभाव है।
6. अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या के महत्वपूर्ण तत्वों में से एक विद्यालय अनुभव है, जो कि पूरे देश भर में (पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी) पूरी अध्यापक शिक्षा प्रकिया के उपेक्षित क्षेत्रों में से एक है। एक राज्य से दूसरे राज्य में विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा प्रयोग किए गए सूक्ष्म-शिक्षण कौशलों की संख्या तथा शिक्षण-अभ्यास कक्षाओं की संख्या में भी भिन्नता है। मिज़ोरम में विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा वास्तविक कक्षा-कक्ष की बजाय काल्पनिक स्थितियों में कुछ पाठ पढ़ाए जाते हैं। जबकि विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा पढ़ाए गए कुछ पाठों का ही अध्यापक शिक्षाविदों द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता है तथा कुछ विद्यार्थी-शिक्षकों को अभ्यास-शिक्षण के लिए सहयोगी विद्यालयों के भरोसे पर छोड़ दिया जाता है।
7. पाठ योजना के प्रारूप तथा अध्ययन विधि के बारे में स्पष्ट निर्देश पाए गए। फिर भी, विद्यार्थी-शिक्षकों में यह उलझन दिखाई दी कि पाठ योजना कैसे बनाएँ तथा इसे कक्षा-कक्ष में कैसे निष्पादित करें?
8. विद्यार्थी-शिक्षकों का यह मत था कि अध्यापक शिक्षाविदों द्वारा यह नहीं बताया गया कि इन अधिगम-केंद्रित रणनीतियों को कक्षा-कक्ष में कैसे अपनाया जाए? यहाँ तक कि कुछ अध्यापक शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थी-शिक्षकों को यह निर्देश नहीं दिया गया कि पाठ योजना कैसे तैयार करें? परिणामस्वरूप अभ्यास-शिक्षण के अवलोकन के दौरान शोधकों ने देखा कि

कुछ विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा व्याख्यान विधि का प्रयोग किया जा रहा है, जो कि यह दर्शाता है कि विद्यार्थी-शिक्षकों के लिए अध्यापक शिक्षा कोर्स कठिन है, उनके पाठ्यचर्या भार में वृद्धि करता है।

9. पाठ योजना के चरणों में बदलाव देखे गए। फिर भी, पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाठ योजना की हरबर्शियन विधि अब भी हावी है। अरुणाचल प्रदेश में पाया गया कि पाठ योजना में ब्लूम के उपागम का प्रयोग किया जाता है।
10. पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में अनेक निजी अध्यापक शिक्षा संस्थानों का प्रभुत्व है तथा वे सरकारी संस्थानों से अधिक हैं। जहाँ सरकारी अध्यापक शिक्षा संस्थानों को विद्यार्थी-शिक्षकों द्वारा अभ्यास-शिक्षण या इंटर्नशिप के लिए सहयोगी विद्यालय प्राप्त करने में समस्या नहीं होती है, वहीं सहयोगी विद्यालयों को प्राप्त करने में निजी संस्थानों की प्रतिष्ठा अहम भूमिका निभाती है। सभी राज्यों ने बताया कि परिवहन सुविधा की उपलब्धता तथा अध्यापक शिक्षा संस्थानों से सहयोगी विद्यालयों की दूरी, सहयोगी विद्यालय के चयन के मुख्य मानदंडों में से एक है।
11. पूर्वोत्तर क्षेत्र के अध्यापक शिक्षाविदों की प्रोफ़ाइल दर्शाती है कि अधिकांश अध्यापक शिक्षाविदों के पास (48%) केवल पाँच वर्ष तक का अध्यापन अनुभव है तथा वे समेकित वेतन पर कार्य कर रहे हैं, जिनमें सबसे कम ₹ 3000/- प्रति माह है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में शिक्षा की गुणवत्ता के सुधार के लिए इस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।
12. यह पूरा क्षेत्र विज्ञान स्नातकों द्वारा बी.एड. कोर्स न करने की समस्या से ग्रस्त है। मिज़ोरम में विज्ञान पृष्ठभूमि के विद्यार्थी-शिक्षकों तथा अध्यापक शिक्षाविदों, दोनों की कमी के कारण अभ्यास-शिक्षण में केवल सामाजिक विज्ञान विषय दिए जाते हैं। इसलिए भविष्य में विज्ञान शिक्षा के लिए इस क्षेत्र में गंभीर निहितार्थ हो सकते हैं, जिससे विज्ञान अध्यापकों की कमी हो सकती है।
13. पूर्वोत्तर क्षेत्र के अध्यापक शिक्षाविदों के पास पेशेवर विकास तथा पदोन्नति के अधिक अवसर नहीं हैं, क्योंकि इसमें से अधिकांश निजी संस्थानों में तथा अत्यंत कम समेकित वेतन पर कार्यरत हैं। इस क्षेत्र के अध्यापक शिक्षाविदों की योग्यता पर भी तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। अध्यापक शिक्षाविदों को उनके नियमित अध्यापन कार्य के अतिरिक्त किसी शोध गतिविधि में बहुत कम शामिल किया जाता है। इन सभी संस्थानों में प्रत्यक्ष चर्चा करने पर अध्यापक शिक्षाविदों तथा प्रधानाचार्यों ने एन.सी.ई.आर.टी. या न्यूपा जैसे राष्ट्रीय संगठनों द्वारा आयोजित पेशेवर विकास कार्यक्रम में भाग लेने की दृढ़ इच्छा जताई।
14. यह भी पाया गया कि अध्यापक शिक्षा संस्थानों को बी.एड. कार्यक्रम में प्रवेश लेने वाले 50 प्रतिशत अंक प्राप्त इच्छुक स्थानीय विद्यार्थियों को पाने में कठिनाई होती है। बी.एड. कार्यक्रम में प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता जो पूर्वोत्तर क्षेत्र में विद्यालय शिक्षा तथा विश्वविद्यालय शिक्षा

की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए एक व्यापक क्षेत्रीय योजना विकसित करने की आवश्यकता की ओर संकेत करता है। ताकि इस क्षेत्रीय योजना के आधार पर पूर्वोत्तर क्षेत्र की समस्या का समाधान हो सके।

सुधार हेतु सुझाव

1. इस अध्ययन में माध्यमिक स्तर पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में संशोधन की आवश्यकता के बारे में सुझाया गया है। ताकि देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को परिवर्तनों के अनुरूप ढाला जा सके तथा भविष्य में अध्यापकों को अपने कक्षा-कक्ष अभ्यास में इन परिवर्तनों को कार्यान्वित करने के लिए तैयार किया जा सके। पूर्वोत्तर के सभी राज्यों की अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या को एन.सी.एफ.—2005 और शिक्षा के अधिकार अधिनियम—2009 की पृष्ठभूमि में एन.सी.टी.ई. द्वारा विकसित अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा—2009 के प्रकाश में संशोधित किए जाने की आवश्यकता है।
2. इस क्षेत्र के विभिन्न राज्यों के संदर्भ आधारित मुद्दों और चिंताओं पर प्रकाश डालने तथा इनको अधिक प्रभावी तरीके से समावेशित करने की आवश्यकता है, ताकि अध्यापकों को वास्तविक अर्थों में परिवर्तनकारी बनाने में सहायता मिल सके। स्थानीय मुद्दों के बारे में अपर्याप्त जानकारी प्रदान करने वाले वर्तमान खंडित दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र कई समस्याओं और सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों से ग्रस्त है, जिन्हें अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या में पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए।
3. शोधकों द्वारा विद्यार्थी-शिक्षकों से चर्चा के दौरान विद्यार्थी-शिक्षकों ने अपने महाविद्यालयों के अभ्यास-शिक्षण के तरीकों के बारे में चिंता तथा असंतोष व्यक्त किया। वे पाठ योजना के प्रारूप के बारे में स्पष्टता की कमी तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के तरीके के बारे में काफ़ी मुखर थे। इससे प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र के अध्यापक शिक्षाविदो को विशेष रूप से विद्यालय अनुभव कार्यक्रम पर केंद्रित पेशेवर विकास कार्यक्रम की आवश्यकता है। यदि राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों, जैसे—एन.सी.ई.आर.टी., एन.सी.टी.ई. या किसी भी विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग द्वारा पूर्वोत्तर क्षेत्र के अध्यापक शिक्षाविदों के प्रशिक्षण के लिए विद्यालय अनुभव कार्यक्रम पर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया जाता है तो यह इन संस्थानों के लिए बड़ा मददगार हो सकता है।
4. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पहल की जाती हैं। तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र के अधिकांश अध्यापक शिक्षा संस्थान निजी और स्व-वित्तपोषित हैं जो कि किसी भी सरकारी पहल के तहत नहीं आते हैं। इससे पूर्वोत्तर राज्यों में एक बहुत ही अनोखी स्थिति बन गई है, जबकि शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करना निजी हो या सरकारी संस्थान, सभी की ज़िम्मेदारी है। लेकिन सरकारी संस्थानों के अध्यापक शिक्षाविदों की पेशेवर विकास की ज़रूरतों का अच्छी तरह से ध्यान रखा जाता है, जबकि निजी संस्थानों के अध्यापक शिक्षाविदों

को स्वयं के भरोसे छोड़ दिया जाता है। विभिन्न निजी संस्थानों के संकाय सदस्यों ने अपने ज्ञान को अद्यतन करने तथा उन्नयन करने के अवसरों में कमी के बारे में अपनी चिंताओं को व्यक्त किया और महसूस किया कि एन.सी.ई.आर.टी. और न्यूपा इत्यादि जैसे राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों को सरकारी एवं निजी अध्यापक, शिक्षाविदों दोनों के लिए पेशेवर विकास कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। क्योंकि वे क्षेत्र के विद्यालयों में अच्छे अध्यापकों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में समान रूप से भागीदार हैं। इसलिए पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए बनी विजन 2020 रिपोर्ट के आधार पर शिक्षा गुणवत्ता सुधारों हेतु पूर्वोत्तर परिषद् द्वारा पूर्वोत्तर क्षेत्र के सभी अध्यापक शिक्षाविदों के लिए एक व्यापक क्षमता विकास योजना तैयार की जा सकती है।

5. पूर्वोत्तर क्षेत्र के अध्यापक शिक्षा संस्थान विज्ञान विषय के विद्यार्थी-शिक्षकों की अनुपलब्धता से ग्रस्त हैं। अतः भविष्य में इस क्षेत्र में विज्ञान के अध्यापकों की कमी को दूर करने के लिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। इन चिंताओं को विजन 2020 में भी स्थान मिला है, लेकिन इसे कार्यान्वयन में बदलने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में शिक्षा में सुधार लाने के लिए विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों और विभिन्न संस्थानों के बीच निकट संस्थागत संबंध विकसित करने की महती आवश्यकता है।

संदर्भ

एन.सी.टी.ई. 1978. *टीचर एजुकेशन करिकुलम — ए फ्रेमवर्क*. एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली.

———. 2009. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फ़ॉर टीचर एजुकेशन*. नयी दिल्ली.

कुमार, के. 1996. मोटिवेशन अ़ॉफ बी.एड. करेस्पोंडेंस कोर्स. संपादन में एम. बी. बुच. *फ़ॉर्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली. पृ. 955–956.

गोल्डहैबर, डी.डी.और ब्रेवर, डी.जे. 2000. इज़ टीचर सर्टिफ़िकेशन मैटर्स हाई स्कूल टीचर सर्टिफ़िकेशन स्टेटस एंड स्टूडेंट अचीवमेंट. *एजुकेशनल इवैल्यूएशन एंड पॉलिसी एनालिसिस*. 22 (2) पृ. 129–145.

गोयल, जे.सी और आर. के. चोपड़ा. 1979. *ए स्टडी ऑफ़ द प्रोब्लम्स बिअरिंग ऑन टीचर एजुकेशन इन द कान्टेक्सट ऑफ़ द 10+2 पैटर्न*. एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली.

डार्लिंग, हैमण्ड एल. 2000 ए – स्टैण्डर्ड सेटिंग इन टीचिंग — चेंजिस इन लाइसेंसिंग, सर्टिफ़िकेशन एंड असेसमेंट. संपादन में पी. रिचर्डसन. *हैंडबुक ऑफ़ रिसर्च ऑन टीचिंग*. (चौथा संस्करण) वाशिंगटन डी.सी. अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन. पृ. 751–776.

डेलोर्स जैक्स. 1996. *लर्निंग – द ट्रेजर विद्इन रिपोर्ट*. इंटरनेशनल कमीशन ऑन एजुकेशन फ़ॉर ट्वेंटी-फस्ट सेंचुरी. यूनेस्को, पेरिस.

दास, आर.सी. और एन. के. जंगीरा. 1987. टीचर एजुकेशन – ए ट्रेंड रिपोर्ट. संपादन में एम. बी. बुच. *थर्ड सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन,* बड़ोदा, सी.ए.एस.ई.

पांडे, एस. 2009. *टीचर एजुकेशन करिकुलम रिफ़ॉर्म सिंस 1978 — ए क्रिटिक*. संपादन में एम.ए, सिद्दीकी. ए.के.शर्मा और जी.एल. अरोड़ा. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

पांडेय, एस. 2004. टीचर एजुकेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज़ — ए रिव्यू ऑफ़ इंडियन स्टडीज़. *जर्नल ऑफ़ एजुकेशन फ़ॉर टीचिंग. वॉल्यूम* 30 (2), पृ. 205 – 224.

पांडा, के.सी. 1997. एजुकेशनल साइकोलोजी रिथिंकिंग अबाउट इट्स रेलेवेन्स. संपादन में आर. पी. सिंह. *टीचर ट्रैनिंग इन इंडिया — लुकिंग अहेड*. फ़ेडरेशन ऑफ़ मैनेजमेंट ऑफ़ एजुकेशनल इंस्टीट्यूशंस.

नेशनल कमीशन ऑन टीचर्स. 1983 – 85. *टीचर एंड सोसायटी*. गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया प्रेस, नयी दिल्ली.

नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन. 1998. *करिकुलम फ्रेमवर्क फ़ॉर क्वालिटी टीचर एजुकेशन*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

फ़रगूशन, आर. एफ़, 1991. पेइंग फ़ॉर पब्लिक एजुकेशन — न्यू एविडेंस ऑन हाऊ एंड व्हाई मनी मैटर्स. *हार्वर्ड जर्नल ऑफ़ लेजिस्लेशन*. 28 (1) पृ.1–35.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 1985. *चैलेंजिस ऑफ़ एजुकेशन*. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

———. 1986. *नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन*. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

———. 2009. *राइट टू एजुकेशन*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय. नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2005. *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

वालिया, के. 1992. सेकेंडरी टीचर एजुकेशन प्रोग्राम्स इन नार्थन इंडिया — एन इवेलूएटीव स्टडी. *फ़ीफ़्थ सर्वे ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

शर्मा, एम. 1976. प्रोग्रेस एंड प्रोब्लम्स ऑफ़ टीचर एजुकेशन इन इंडिया. पीएचडी इन एजुकेशन, पटना यूनिवर्सिटी.

शिक्षा मंत्रालय.1948–49. *रिपोर्ट ऑफ़ द यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन*. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

———. 1953. *रिपोर्ट ऑफ़ द सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन* (1952–53). भारत सरकार, नयी दिल्ली.

———. 1966. *एजुकेशन एंड नेशनल डिवेलपमेंट – रिपोर्ट ऑफ़ कमीशन* (1964 – 66). भारत सरकार, नयी दिल्ली.

शुलम, आई.एस. 1987. नोलेज एंड टीचिंग — फ़ंडामेंटस ऑफ़ न्यू रिफ़ॉर्म्स. *हार्वर्ड एजुकेशनल रिव्यू*. 57 (1) पृ. 4 –14.

सिंह, एल. सी. और मल्होत्रा, एस.पी. 1991. रिसर्च इन टीचर एजुकेशन — ए ट्रैड रिपोर्ट. संपादन में एम. बी. *बुच फ़ोर्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन*. एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली. II, पृ. 899 – 916.

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 38 **अंक 3** **जनवरी 2018**

इस अंक में

संपादकीय		3
भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में माध्यमिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम स्थिति, मुद्दे और समस्याएँ	शबनम मधुलिका पटेल सरोज पांडे	5
हाँ, शिक्षक शिक्षा में 20 सप्ताह की इंटर्नशिप!	जितेन्द्र कुमार पाटीदार	17
प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम	रत्नर्त्तु मिश्रा	25
भारत में बहुभाषिकता तथा हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ एवं समाधान	रश्मि श्रीवास्तव	38
शाला-पूर्व शिक्षा में खेल की भूमिका	कृष्ण चन्द्र चौधरी	50
बी.एड.प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण-विधि विषय में उपलब्धि पर कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री का प्रभाव	नीरज जोशी रमा मिश्रा	57
नयी तालीम के केंद्र — आनंद निकेतन एक विहंगावलोकन	ऋषभ कुमार मिश्रा	68
गाँधीवादी मूल्यों पर केंद्रित प्राथमिक शिक्षा	पूर्णिमा पाण्डेय दीपा मेहता	78
शैक्षिक स्त्री विमर्श तब और अब	निर्मला सिंह	86
भारतीय समाज में किन्नरों की शैक्षिक एवं सामाजिक अपवंचन की दशा एवं दिशा	अभिषेक श्रीवास्तव	94
शिक्षा में तकनीकी की समझ एवं नवीन प्रयोग	विनोद कुमार कंवरिया	105
वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान शिक्षा के मायने	सविता प्रथमेश	112

Prelims.indd 1 10/4/2018 4:41:22 PM

पढ़ेंगे
लिखेंगे
खेलेंगे
संग-संग

संपादकीय

प्रिय पाठकों! नव वर्ष की बहुत सारी शुभकामनाएँ एवं बधाई। नव वर्ष का स्वागत हमने अत्यंत उत्साह एवं सौहार्दपूर्वक किया तथा गत वर्ष के सुखद अनुभवों का अनुसरण करते हुए, आने वाले समय को और अधिक सुखद एवं उज्ज्वल बनाने के लिए भविष्य की आशाओं के साथ नए विचारों, प्रयोगों, सिद्धांतों तथा तकनीकों आदि को उपयोग में लाने का प्रयास निरंतर रखना है। इसी शृंखला में *भारतीय आधुनिक शिक्षा* का यह अंक विद्यालयी शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के विभिन्न सरोकारों एवं मुद्दों, नए विचारों, अनुभवों तथा शोध परिणामों आदि को लेकर आपके समक्ष आया है।

विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में उत्तरोत्तर सुधार के लिए सरकारों एवं समाज द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। जिसमें शिक्षक की मुख्य भूमिका होती है। ऐसे में अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता तथा पेशेवर शिक्षकों की तैयारी एक महत्वपूर्ण सरोकार है। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पूरे देश में एवं विशेषकर पूर्वोत्तर क्षेत्र में चिंता का विषय बनी हुई है। "भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में माध्यमिक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम – स्थिति, मुद्दे और समस्याएँ" पर किए गए शोध अध्ययन पर आधारित शोध पत्र स्कूली पाठ्यचर्या की पृष्ठभूमि पर केंद्रित है तथा अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के आयोजन में अनुभव किए गए अवरोधों के साथ-साथ पूर्वोत्तर राज्यों में विद्यमान सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा के शोध को दर्शाता है। शिक्षक शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु एन.सी.टी.ई. रेग्यूलेशन – 2014 में शिक्षकों की पेशेवर तैयारी का एक मज़बूत खाका प्रस्तुत किया गया है, जिसमें शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या का अद्यतन स्वरूप देते हुए इंटर्नशिप की अवधि 20 सप्ताह (6 माह) कर दी गई है तथा इसे वर्तमान शिक्षक शिक्षा के समस्त कार्यक्रमों (कोर्सों) में कार्यान्वित किया जा रहा है। "हाँ, शिक्षक शिक्षा में 20 सप्ताह की इंटर्नशिप!" लेख के माध्यम से लेखक द्वारा शिक्षक शिक्षा संस्थानों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, विद्यार्थी-शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, शिक्षकों एवं प्रशासकों तथा अंत में समाज की शिक्षक शिक्षा इंटर्नशिप पर समझ विकसित करने के लिए इंटर्नशिप का विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ने में रचनावादी उपागम की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी की सक्रिय सहभागिता शिक्षा को रुचिपूर्ण बना देती है। ऐसे में प्राथमिक स्तर पर रुचिपूर्ण पर्यावरण शिक्षा आज की आवश्यकता है। "प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम" नामक लेख में प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता, रचनावाद के सिद्धांतों और उनके आधार पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। लेकिन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सहज एवं सरल बनाने का माध्यम कक्षा की भाषा होती है। हमें भी अपनी कक्षाओं के भीतर हिंदी भाषा शिक्षण के माध्यम से एक ऐसा माहौल बनाना होगा, जिसमें कक्षा में बैठे छोटे-बड़े बच्चों का हृदय अपनी इस राजभाषा के प्रति गौरव से भर सके। इन्हीं सरोकारों का ध्यान रखते हुए हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियों एवं उनके व्यावहारिक समाधान का उल्लेख "भारत में बहुभाषिकता तथा हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियाँ एवं समाधान" नामक लेख में किया गया है।

"शाला-पूर्व शिक्षा में खेल की भूमिका" नामक लेख में शिक्षा में खेल के महत्व को उद्घाटित करते हुए बताया गया है कि खेल के माध्यम से बच्चों के शारीरिक कौशल को विकसित करने एवं स्वस्थ रहने में सहायता मिलती है। खेल बच्चों को ज्ञान बढ़ाने में, निर्णय लेने में एवं मानसिक कौशल विकसित करने में सहायता करता है। खेल बच्चों में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है। यदि विद्यार्थियों को अपनी कुशलता तथा स्व-अध्ययन की आदतों को मज़बूत करना है तो हमें उन्हें स्व-अधिगम सामग्री प्रदान करनी होगी। अतः कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री के प्रभाव का बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की उपलब्धि पर आधारित शोध पत्र "बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की गणित शिक्षण विधि विषय में उपलब्धि पर कंप्यूटरीकृत स्व-अधिगम सामग्री का प्रभाव" दिया गया है।

"नयी तालीम के केंद्र — आनंद निकेतन — एक विहंगावलोकन" नामक लेख गाँधीजी की नयी तालीम पद्धति पर आधारित आनंद निकेतन विद्यालय के अवलोकन और आख्यानों के आधार पर उद्घाटित करता है कि किस प्रकार से यहाँ शिक्षण-अधिगम की संस्कृति एक संपोषणीय परिस्थिति में सशक्त विद्यार्थी और सशक्त शिक्षकों के साथ जीवंत होती है। इसी कड़ी में "गाँधीवादी मूल्यों पर केंद्रित प्राथमिक शिक्षा" पर लेख है। इस लेख में बताया गया है कि हमें विद्यार्थियों में अहिंसा, शिष्टाचार, विनम्रता, भाईचार आदि मूल्यों का विकास करने के लिए अपने महान विचारकों, दर्शनशास्त्रियों के विचारों को अपनाना होगा। मानवीय मूल्यों के साथ-साथ विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत समानता का मूल्य भी विकसित करना होगा। इन्हीं मूल्यों के आधार पर लेख, "शैक्षिक स्त्री विमर्श — तब और अब" बालिका शिक्षा पर ज़ोर डालता है। प्रस्तुत लेख में महिला-पुरुष साक्षरता दर, लिंगानुपात, बालिका के पोषण की चुनौतियाँ, शिक्षा की स्थिति, स्त्री शिक्षा के संबंध में चुनौतियाँ, स्त्री तथा स्त्रियों के विधिक अधिकारों की स्थिति एवं तत्पश्चात् स्त्री शिक्षा को सामाजिक धरातल पर प्रतिबिंबित किया गया है। इसके साथ ही लेख, "भारतीय समाज में किन्नरों की शैक्षिक एवं सामाजिक अपवंचन की दशा एवं दिशा" विस्तृत तथ्यपरक जानकारी देता है। अगला लेख "शिक्षा में तकनीकी की समझ एवं नवीन प्रयोग" राष्ट्रीय आई.सी.टी. नीति एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के शैक्षिक प्रौद्योगिकी और आई.सी.टी. पर प्रभाव की चर्चा कर शिक्षा में तकनीकी की समझ एवं नवीन प्रयोग के महत्व को सुदृढ़ एवं प्रचारित करता है। इस प्रकार, शिक्षा में तकनीकी का उपयोग समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने में मदद करता है। इसी बात को, "वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान शिक्षा के मायने" नामक लेख में समझाने का प्रयास किया गया है। यह लेख असामाजिक कुरूतियों एवं अंधविश्वास पर आधारित अनुभवों पर ध्यान केंद्रित करते हुए शिक्षा के माध्यम से उन्हें दूर कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने पर ज़ोर देता है।

आप सभी की प्रतिक्रियाओं की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है। आप हमें लिखें कि यह अंक आपको कैसा लगा। साथ ही, आशा करते हैं कि आप हमें अपने मौलिक तथा प्रभावी लेख एवं शोध पत्र प्रकाशन हेतु भेजेंगे। आप अपने लेख एवं शोध पत्र हमें ई-मेल journals.ncert.dte@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

अकादमिक संपादकीय समिति

पत्रिका के बारे में

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षाविदों, शैक्षिक प्रशासकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों, शोधकों एवं विद्यार्थी-शिक्षकों को एक मंच प्रदान करना। शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों, जैसे — बाल्यावस्था में विकास, समकालीन भारत एवं शिक्षा, शिक्षा में दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान के आधार एवं पाठ्यचर्या, अधिगम का आकलन, अधिगम एवं शिक्षण, समाज एवं विद्यालय के संदर्भ में जेंडर, समावेशी शिक्षा, शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा हेतु आई.सी.टी. में नवीन विकास, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की स्थिति पर मौलिक एवं आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा भेजे गए सभी लेख, शोध-पत्र आदि का प्रकाशन करने से पूर्व संबंधित लेख, शोध-पत्र आदि का समकक्ष विद्वानों द्वारा पूर्ण निष्पक्षतापूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अत: ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते, इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

© 2018. पत्रिका में प्रकाशित लेखों का रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित है, परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना, लेखों का पुनर्मुद्रण किसी भी रूप में मान्य नहीं होगा।

सलाहकार समिति

निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प. : हृषिकेश सेनापति

अध्यक्ष, अ.शि.वि. : राजरानी

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : एम. सिराज अनवर

संपादकीय समिति

अकादमिक संपादक : जितेन्द्र कुमार पाटीदार

मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल

अन्य सदस्य

राजरानी, रंजना अरोड़ा

उषा शर्मा, मधुलिका एस. पटेल

बी.पी. भारद्वाज

प्रकाशन मंडल

मुख्य व्यापार प्रबंधक : गौतम गांगुली

मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकारा

उत्पादन सहायक : मुकेश गौड़

आवरण

अमित श्रीवास्तव

हमारे कार्यालय

प्रकाशन प्रभाग

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस

श्री अरविंद मार्ग

नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ़ीट रोड

होस्केरे हल्ली एक्सटेंशन

बनाशंकरी III स्टेज

बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन

डाकघर नवजीवन

अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी. डब्ल्यू. सी. कैंपस

धनकल बस स्टॉप के सामने

पनिहटी

कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी. डब्ल्यू. सी. कॉम्प्लैक्स

मालीगाँव

गुवाहाटी 781 021 फ़ोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : ₹ 50 वार्षिक : ₹ 200

Cover 2nd & 3rd.indd All Pages

रजि. नं. 42912/84

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

Cover 1 and 4.indd All Pages